॥ श्री गणेशाय नमः ॥

नित्य पठनीय

सत्संग-सुधा-संग्रह

संग्रहकर्त्ता-

पं० कामाख्या प्रसाद शर्मा

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

नित्य पठनीय

सत्संग-सुधा-संग्रह

*

संग्रहकर्त्ता :

पं० कामाख्या प्रसाद शर्मा, बी० काम०

ज्यौतिष-हस्तरेखाशास्त्रविद्

१८, गोविन्द बनर्जी लेन, बाँधाघाट,

सलकिया, हवड़ा-६

*

प्रकाशक :

कमला चैरिटि ट्रस्ट

७, लायन्स रैंज,

कलकत्ता-१

संख्या—२००० प्रतियाँ
संवत्—२०४१ विक्रमी

प्राप्ति स्थान :
कमला चैरिटि ट्रस्ट
७, लायन्स रैंज,
कलकत्ता—१

मूल्य : सप्रेम उपयोग

दो शब्द

"तत्त्वमेकं द्विधा स्थितं"—अर्थात् एक ही सत्य दो रूप धारण करके दीख रहा है। वही कृष्ण है, वही राधा है। भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा—ये लीला भेद से अलग-अलग हैं। इसी लीला भेद से ही इनके रूप, गुण, लीलाकार्य और उपासना-पद्धति आदि में भेद है। तत्त्व रूप में सर्वथा एकत्व है। कहीं भी कुछ भी भेद की कल्पना नहीं है। सबको एक मानकर ही अपने इष्ट रूप की उपासना करनी चाहिए और उस अपने इष्ट के ही ये सब विभिन्न लीला रूप हैं।

एक ही परमेश्वर की भिन्न-भिन्न शक्तियाँ मानी गई हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन सबसे बड़े देवता हैं। सृजन शक्ति को ब्रह्मा, पालन शक्ति को विष्णु और संहार शक्ति को महेश कहा है। ये पुल्लिंगी नाम हैं। स्त्रीलिंगी नाम हैं—सरस्वती, लक्ष्मी, काली। भक्त भगवान को अपनी रुचि और भावना के अनुसार पुरुष या नारी रूप में देखता है और उसी के अनुसार जो नाम रूप उसे प्रिय, इष्ट होते हैं उन्हीं को अपना लेता है। पुल्लिंगी देव और स्त्रीलिंगी देवी कहलाती है।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत् क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

अर्थात्—वायु जिस प्रकार गंदे स्थान से गन्ध को ग्रहण कर ले जाती है, उसी प्रकार जीवात्मा भी जिस शरीर को छोड़ता है, उससे मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण कर नये प्राप्त होने वाले शरीर में ले जाता है।

वायु पुष्प की सुगन्ध को ले जाती है, पुष्प तो वहीं पड़ा रहता है। इसी प्रकार शरीर यहीं पड़ा रहता है, लोग उसे जला देते हैं, परन्तु जीव की वास (सुवास या कुवास) प्रकृति के आकर्षण के साथ जाती है।

मनुष्य जिस भावना से कर्म करता है, उसका प्रभाव वायुमण्डल में, आकाश में रहता है। सृष्टि के सूक्ष्म परमाणु उन्हें ग्रहण करते रहते हैं और इन ज्योति-पिण्डों (ग्रहों) तक पहुँचाते रहते हैं। इधर इन ज्योति-पिण्डों के प्रभाव मनुष्य तक पहुँचते रहते हैं। इस प्रकार मनुष्य और ज्योति-पिण्डों के बीच परस्पर प्रभावों और परिणामों का यह आदान-प्रदान चलता रहता है। इस तरह मनुष्य अपने गुण-धर्मानुसार प्रभाव उन ज्योति-पिण्डों से खींचते, पाते या ग्रहण करते हैं। जैसे एक मनुष्य को उसका मन संचालित करता है, वैसे ही इस संसार को सृष्टि का परमेश्वर का महामन संचालित करता है। अतः यह सारा खेल मन ही करता है जो अपने में भावनायें भरता रहता है। मन की आंखें विवेक या बुद्धि है। मन तो अन्धा है, बुद्धि देखकर चलती है। अतः विवेक या बुद्धि प्रधान है, जिससे भाव पैदा होते हैं और भाव से ही फल की प्राप्ति होती रहती है।

कामाख्या प्रसाद शर्मा

सलकिया, हवड़ा-६

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

नित्य पठनीय

सत्संग-सुधा-संग्रह

"असतो मा सद्गमय" अर्थात् हम सत्य से वंचित न रहें।

"तमसो मा जोतिर्गमय" अर्थात्—हम अन्धकार में न भटकें।

हितैषी कौन ?

जो अपने सम्पर्क में रहने वाले और आनेवाले बन्धु-बान्धवों को सत्सङ्ग में लगाकर भगवत्प्राप्ति के मार्ग में सहायक बनता है, वही सच्चा हितैषी है।

सत्सङ्ग की आवश्यकता क्यों ?

मनुष्य शरीर केवल परमात्मा की प्राप्ति के लिये मिलता है, किन्तु भूल के कारण मानव अपने उद्देश्य से विमुख होकर धन, मान, बड़ाई आदि नाशवान् पदार्थों की प्राप्ति में इस अमूल्य निधि का दुरुपयोग करने लगता है और इसीसे ८४ लाख योनि एवं नरकों की तैयारी कर लेता है। इस महती विपत्ति से बचने का तथा सांसारिक उलझनों को सुलझाने का अत्यन्त सुगम उपाय सत्संग है। सत्संग मिलने पर मनुष्य-जन्म का उद्देश्य पहचान में आ जाता है और तभी भूला-भटका मानव परमात्मा की ओर बढ़ता है।

संग्रह (पुस्तक) की आवश्यकता क्यों ?

संत (गुरु) एक जगह रह-रहकर थोड़े लोगों को लाभ पहुँचाते है तो संग्रह (पुस्तक) अनेकों को घर-घर जाकर वर्षों तक लाभ पहुँचाते रहते हैं। ●

जागो !

जन्म दुःखं जरा दुःखं जाया दुःखं पुनः पुनः ।
अन्तकालं महा दुःखं तस्मात् जागृहि जागृहि ॥

अर्थात्—जन्म दुःख है, वृद्धावस्था दुःखमय है, और स्त्री (स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बजन) दुःख रूप है और अन्तकाल भी बड़ा दुःखद है। इसलिए जागो-जागो ।

अपने मन की विचारधारा को बदलो । मन को संसार से हटाकर प्रभु में लगाओ । प्रभु के गुणों को तथा प्रभु की कथा को पढ़ो-सुनो-सुनाओ । धर्म के नियमों का पालन करो तभी मनुष्य शरीर की सार्थकता है ।

कर्म करने में तथा पाप-पुण्य करने में 'पुरुषार्थ प्रधान है और 'दैव' गौण रहता है । जीवन में जो सुख-दुःख आते हैं उनमें 'दैव' प्रमुख है और 'पुरुषार्थ' गौण रहता है ।

षडंगादि वेदो मुखे शास्त्रविद्या, कवित्वादिगद्यं सुपद्यं करोति ।
इटरंघ्रि पद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किम् ततः किम् ततः किम् ततः किम् ॥

अर्थात्– षडंगादि वेदों का ज्ञान हो, शास्त्र वर्णित सर्व विद्या मुख पाठ हो, कवित्वमय वाणी में सुन्दर गद्य-पद्य रचने की शक्ति हो, किन्तु चित्त हरिचरणों में लगा हुआ न हो तो उन सभी का क्या अर्थ है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ।

स्वयं की चिन्ता मत करो । स्वयं को प्रभु के अर्पण कर दो वह सब चिन्ताओं से मुक्त करेगा । कर्म में कमी मत रखो । सफलता की कामना मत करो । सफलता तो मिलेगी ही ।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तान प्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥

अर्थात्—तुम जिन भोगों को भोगते हो, वह अन्दर के देवताओं के कारण ही भोगते हो। जो देवता तुम्हारे लिये कार्य करते हैं, उनके निमित्त कुछ करना तुम्हारा कर्तव्य है।

चेतावनी !

दो बातों को याद रख, जो चाहे कल्याण।
'नारायण' एक मौत को दूजा श्रीभगवान॥

शरीर का कोई भरोसा नहीं है, आज है कल नहीं। किस समय मृत्यु क्षण भर में इस सुन्दर शरीर का, जिस पर हम नाना प्रकार से गर्व करते हैं, नाश कर देगी इसका पता नहीं। किस समय कौन-सा रोग या घटना निमित्त होगी, मालूम नहीं। प्रायः देखने में आता है कि उम्र के ५०वें वर्ष के पास ही से सभी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। कभी दस्तका लगाना, कभी उदर-विकार, कभी कुछ और कभी कुछ, यह इस शरीर के साथ लगा रहता है। यह और कुछ भी नहीं है, मात्र ईश्वर की तरफ से एक चेतावनी है कि आहार कम करो, भोग कम करो, साधना करो, वैराग्य की भावना रखो तथा प्रभु को भजो। समय तेजी से चला जा रहा है और मृत्यु क्षण ही में आ जायेगी। अतः आज ही, अभी से अपने अमूल्य समय को तास-चौपड़, खेल-तमाशे, हंसी-मजाक, अश्लील व निस्प्रयोजन कथा-कहानी आदि का परित्याग कर आध्यात्मिक उन्नति में लगावें।

यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः॥
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्।
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

अर्थात्—जब तक स्वास्थ्य ठीक है, वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियों में साधन-भजन-ध्यान करने की शक्ति है, आयु समाप्त नहीं हो गयी है, विवेकी बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि तभी तक आध्यात्मिक उन्नति के लिए बड़ा भारी प्रयत्न

कर लें। क्योंकि घर में आग लग जाने पर कोई कहे कि जल्दी करो, कुआँ खु
वाओ, आग लग गई है, जल चाहिए। तो यह सुनकर चाहे कितनी ही ज
की जाय, उद्योग किया जाय, किन्तु कब कुआँ खुदा और जल आया। आयु
प्रतिक्षण शेष हो रही है अतएव अभी से अध्यात्म में लग जावें पीछे के
नहीं छोड़ें।

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत्॥

अर्थात्—सौ काम छोड़कर भोजन करो; हजार काम छोड़कर स्नान
लाख काम छोड़कर दान करो; करोड़ काम छोड़कर प्रभु का स्मरण करो,
करो, सेवा करो।

मनुष्य का प्रथम कर्तव्य

हमारे जो माता, पिता और गुरुजन हैं, उनके तो हम ऋणी
उन्होंने हमारे हितके लिये हमारा जो कुछ उपकार किया है, उसको
कभी नहीं भूलना चाहिये। वस्तुतः सौ वर्षोंतक उनकी सेवा करके
हम उनके ऋणसे मुक्त नहीं हो सकते।

इसलिये मनुष्यको प्रातः काल उठकर नित्य नियम-पूर्वक माता-पि
आदि गुरुजनों के चरणोंमें नमस्कार करना चाहिये तथा हर स
भगवान्का जप-स्मरण करते हुए उनकी सेवा और उनकी आज्ञा
पालन तत्परताके साथ निष्काम भावसे करना चाहिये। सदा वि
प्रेमयुक्त, हितकर वचन बोलना चाहिये। एवं उनके आपत्तिग्रस्त
पर या वृद्ध हो जानेपर अथवा बीमार हो जानेपर तो उनकी वि
रूपसे सेवा करनी चाहिये यह मनुष्यका विशेष परमधर्म है।

हमलोगोंको घरपर आये हुए अतिथिको भी भगवान्का स्वरूप समझकर निरन्तर भगवान्का स्मरण रखते हुए उनकी निष्काम भावसे सेवा करनी चाहिये।

सर्वसाधारण प्राणियोंकी सेवाकी अपेक्षा भी आपत्तिग्रस्त प्राणी की सेवा बहुत ही उच्चकोटिका धर्म है। जैसे कोई बाढ़, अकाल-महामारी, भूकम्प आदिसे पीड़ित हों अथवा कोई खाने-पीनेकी सामग्रीके अभावसे पीड़ित हों तो उनकी सेवा-सहायता करनेकी विशेष आवश्यकता है।

—स्वामी रामसुख दासजी के प्रवचन से

समझें और आचरण करें

कृष्ण त्वदीय पद-पंकज-पंजरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानस-राजहंस।
प्राण-प्रयाण समये कफवात पित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥

भावार्थ—भगवन्! अभी से हमारा मन तेरे चरण-कमल में लगे। मरते समय फिर जो दुरवस्था होती है, उसमें कहाँ से तेरा स्मरण हो सकेगा?

अतः स्मरण अभी करें।

यथा काष्ठ च काष्ठं च समेयातां महार्णवे।
समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कश्चन॥
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञानश्च वसूनि च।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः॥

अर्थ—जैसे महा समुद्र में (बहती हुई) एक लकड़ी से दूसरी लकड़ी जाती है और दोनों कुछ समय तक साथ-साथ रहकर फिर अलग हो जाती उसी प्रकार पत्नी, पुत्र, बन्धु-बान्धव और धन कुछ समय के लिए मिलकर कहीं के कहीं चले जाते हैं, इनका वियोग निश्चित ही है।

अतः समुचित प्रेम करें।

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति॥

अर्थ—जिसने जीवन के पहले हिस्से (बाल्यावस्था) में विद्या नहीं दूसरे हिस्से (युवावस्था) में धन नहीं कमाया और तीसरे हिस्से (प्रौढ़ावस्थ पुण्योपार्जन नहीं किया, वह चौथेपन (वृद्धावस्था) में क्या करेगा ?

अतः अवस्थानुसार व्यवस्था करें।

मंगलाचार युक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम्।
जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते॥

अर्थ—सदा शुभ कर्म करने वालों का और चित्त को वश में रखने वालों तथा जप एवं होम करने वालों का कभी पतन नहीं होता।

अतः जप-तप-दान-धर्म करें।

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति।

अर्थ—किया हुआ पाप पृथ्वी में बोये बीज की भांति तत्काल फल नहीं दे किन्तु धीरे-धीरे फलित होने का समय आने पर कर्त्ता का मूलोच्छेदन डालता है।

अतः पाप कर्म न करें।

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तथा तथाऽस्य सर्वार्थाः सिध्यन्ते मात्र संशयः ।

अर्थ—मनुष्य ज्यों-ज्यों अपने मन को कल्याणकारी कार्यों में लगाता है, त्यों-त्यों उसके सारे कार्य सिद्ध होते जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।

अतः पुण्य कर्म करें ।

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
धाराधरो वर्षति नात्महेतोः
परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

अर्थ—नदियां स्वयं अपना पानी नहीं पीतीं, वृक्ष स्वयं अपना फल नहीं खाते, बादल अपने लिए वर्षा नहीं करते । सज्जनों की सम्पत्ति परोपकार के लिए ही होती है ।

अतः परोपकार करें ।

इन्द्रियाण्येव तत् सर्वं यत् स्वर्गनरकावुभौ ।
निगृहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥

अर्थ—जो स्वर्ग और नरक हैं वे ये इन्द्रियाँ ही हैं । इनको वश में रखना स्वर्ग और स्वतन्त्र छोड़ देना नरक है ।

अतः इन्द्रियों को वश में रखें ।

गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि ।
सानुकूले पुनस्तस्मिन्दोषोऽपि च गुणायते ॥

अर्थ—विधाता के प्रतिकूल होने पर मनुष्य के गुण भी दोष-रूप हो जाते हैं और उसी के अनुकूल होने पर दोष भी गुण बन जाते हैं ।

अतः समयानुसार आचरण करें।

ताद्दशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि ताद्दशः।
सहायास्ताद्दशा एव याद्दशी भवितव्यता॥

अर्थ—जैसा होनहार होता है, वैसी ही बुद्धि, क्रिया और सहायक भी
जाते हैं।

अतः बुद्धि संतुलित रखें।

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्यतु भवितव्यता नास्ति॥

अर्थ—जो होनहार नहीं होता वह नहीं होता, जो होनहार है वह प
बिना ही हो जाता है। जो नहीं मिलने को होता है वह हाथ में आक
नष्ट हो जाता है।

अतः भाग्य पर भरोसा रखें।

यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनस्तु सुसंयते।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥

अर्थ—जिसके हाथ, पैर, मन और वाणी सुसंयत हैं तथा जिसकी वि
कीर्ति और तपस्या पूरी है, उसे ही तीर्थ का फल मिलता है।

अतः शुद्ध मन से तीर्थाटन करें।

अश्रद्धानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्न संशयः।
हेतुनिष्ठाश्च पचैते न तीर्थफल भागिनः॥

अर्थ—श्रद्धारहित, पापी, संशयग्रस्त, नास्तिक और तार्किक—इन
प्रकार के मनुष्यों को तीर्थ का फल नहीं मिलता।

अतः इन पांचों का त्याग करें।

नोपभोगैः क्षयं यान्ति न प्रदानैः समृद्धयः।
पूर्वार्जितानामन्यत्र सुकृतानां परिक्षयात्।।

अर्थ—जब तक पहले का पुण्य रहता है तब तक भोग और दान करने से भी धन समाप्त नहीं होता। किन्तु पुण्यों के क्षय होने पर वह बिना दान-भोग किये हुये भी नष्ट हो जाता है।

अतः पुण्य संचित करते रहें।

अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्री दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी।।

अर्थ—जो दान नहीं देता, वह दरिद्र होता है और दरिद्र होकर उसे विवश होकर पाप करना पड़ता है। पापों के प्रभाव से वह नरक में जाता है और नरक से निकलने पर फिर दरिद्र तथा पापी ही होता है। इस तरह वह भारी कुचक्र में फंस जाता है।

अतः दान अवश्य करते रहें।

आयासशत लब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः।
गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः।।

अर्थ—सैकड़ों प्रकार के प्रयत्न एवं श्रम से कमाये हुए तथा प्राणों से भी प्यारे धन का दान ही उसकी एक मात्र गति है। इस धन का अन्य प्रयोग तो विपत्तियाँ हैं।

अतः धनका सदुपयोग तथा दान करें।

अन्य क्षेत्रे कृतं पापं तीर्थ क्षेत्रे विनश्यति।
तीर्थ क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति।।

अर्थ—किसी अन्य जगह में किये गये पाप का नाश तो तीर्थस्थान मे
जाता है किन्तु तीर्थस्थान में किये गये पाप का नाश नहीं होता, वह वज्रले
समान हो जाता है।

अतः तीर्थों में पाप न करें।

दुःख का कारण

सुख तभी मिल सकता है जब दुःख के कारणों को जान लिया
और उसकी निवृत्ति का उपाय किया जाय। दुःख ३ प्रकार के
गये हैं --

१—आध्यात्मिक—जो दुःख शरीर के अन्दर उत्पन्न होते
जैसे—ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह आदि।

२—आधिभौतिक—जो अन्य प्राणियों के संसर्ग से उत्पन्न
हैं। जैसे—अन्य से झगड़ा करने से या अन्य द्वारा आघात
से आदि।

३—आधि दैविक—जो दैवी शक्तियों के द्वारा प्राप्त होते
जैसे—अग्नि, जल, वायु आदि प्राकृतिक प्रकोप द्वारा।

दुःख सृष्टि काल के साथ ही होता है और उसके साथ ही स
हो जाता है। अर्थात् जन्म-मरण से दुःख होता है। जन्म-मरण
से होता है और कर्म प्रवृत्ति से होता है। प्रवृत्ति राग-द्वेष से होत
और राग-द्वेष मिथ्या ज्ञान से होता है। अतएव ज्ञान ही दुःख
नाश कर सकता है और वह ज्ञान सत्संग से ही आता है।

★

गीता सार

● क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो ? किससे व्यर्थ डरते हो ? कौन तुम्हें मार सकता है ? आत्मा न पैदा होती है न मरती है।

● जो हुआ वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है, अच्छा हो रहा है। जो होगा वह भी अच्छा ही होगा। तुम भूत का पश्चाताप न करो। भविष्य की चिन्ता न करो। वर्त्तमान चल रहा है।

● तुम्हारा क्या गया जो तुम रोते हो ? तुम क्या साथ लाये थे, जो तुमने खो दिया ? तुमने क्या पैदा किया जो नाश होगया ? न तुम साथ लेकर आए, जो लिया यहीं से लिया। जो दिया यहीं पर दिया। जो लिया इसी (भगवान्) से लिया। जो दिया इसी को दिया। खाली हाथ आए, खाली हाथ चले। जो आज तुम्हारा है, कल किसी और का था। परसों किसी और का होगा। तुम इसे अपना समझ कर मग्न हो रहे हो। बस यही प्रसन्नता तुम्हारे दुःखों का कारण है।

● परिवर्त्तन संसार का नियम है। जिसे तुम मृत्यु समझते हो, वह भी तो जीवन है। तुम करोड़ों के स्वामी बनजाते हो, दूसरे ही क्षण तुम दरिद्र हो जाते हो। मेरा-तेरा, छोटा-बड़ा, अपना-पराया मन से मिटादो, विचार से हटादो फिर सब तुम्हारा, तुम सब के हो।

● न यह शरीर तुम्हारा है, न तुम इस शरीर के हो। यह अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश से बना हुआ है, और इसी में मिल जाएगा। परन्तु आत्मा स्थिर है, फिर तुम क्या हो ?

● तुम अपने आपको भगवान के अर्पित कर दो। यही सबसे
सहारा है। जो इस सहारे को जानता है, वह भय, चिन्ता
शोक से सर्वदा मुक्त है।

● जो कुछ भी तुम करते हो, उसे भगवान के अर्पण करते च
ऐसा करने से तुम सदा जीवन मुक्ति का आनन्द अनुभव कर

समझें और ग्रहण करें

१– भगवान में अपनापन करो कि प्रभु मेरे ही हैं, तब आपका प्र
प्रेम होगा।

२– सुख भोग और संग्रह करने की इच्छा ही दुःख का मूल कारण

३ अगर आप सुख चाहते हैं तो दूसरों को सुखी करने का भाव

४ आसरा भगवान का रखो, नाशवान का कभी आसरा नहीं
नाशवान का सहारा लेने से दुःख होगा।

५ परिवार को एवं कारोबार को, सब जीवों को भगवान का
कर सेवा एवं तत्परता से काम करें।

६– सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय में सम रहें।

७ अगर आप किसी का हित नहीं कर सकते तो कम-से-कम
तो मत करिये। इससे आपका कुछ भी खर्च नहीं होगा।

८– जो जा रहा है उसको पकड़ो मत, और नहीं आ रहा है
बुलाओ मत। आपसे आप आया है उसका उपयोग ठीक
आने दो, रोको मत।

साधना कैसे ?

साधना की गति ३ प्रकार की होती है—

१—वानर गति—बन्दर फल को मुख में लेकर जैसे ही उछलता है, वैसे ही फल गिर पड़ता है।

२—पक्षी-गति—पक्षी पेड़ के फल को चोंच मारता है, फल नीचे गिर पड़ता है, परन्तु पक्षी उसे चोंच से लेकर उड़ नहीं सकता।

३—चींटी-गति - चीटियां धीरे धीरे अपने भोजन के पास जाती हैं, भोजन के पदार्थ को धीरे से मुँह में लेती हैं और धीरे-धीरे ही उसे चखती हैं। इसी गति से साधना करना श्रेष्ठ है।

बार-बार निश्चय करें

१—मुझ पर सर्वशक्तिमान भगवान की अनन्त कृपा है।

२ – वे भगवान मुझपर अहैतुक प्रेम करते हैं।

३—उनकी कृपाशक्ति से मेरे सारे विघ्न-बाधा नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं।

४ – उनकी कृपाशक्ति के प्रकाश में मेरे समीप किसी प्रकार का अन्धकार नहीं आ सकता।

५—उनकी कृपाशक्ति से मेरे सारे दुर्गुण-दुर्विचार नष्ट हो गये हैं।

६—उनकी कृपाशक्ति से मुझ में विश्वास, प्रेम, शान्ति समता आदि उत्पन्न हो गये।

७ – उनकी कृपाशक्ति से मेरी वृत्ति संसार से हटकर उन्हीं में रमने लगी है।

८- उनकी कृपाशक्ति से मेरा भविष्य परमोज्ज्वल हो गया है।

९- मैं समस्त पाप ताप से मुक्त होकर उनके चरण-कमलों में निश्च
ही पहुँच जाऊँगा।

जान लें

१—मुक्ति मनको मिलती है, आत्मा को नहीं।

२—आत्मा और परमात्मा यह औपाधिक भेद है।

३—जीव और ईश्वर यह भी औपाधिक भेद है।

४—व्यापकाधिष्ट चैतन्य ही ईश्वर (अंशी है।

५—शरीराधिष्ट चैतन्य ही जीव (अंश) है।

६ जीवात्मा मनके साथ जाता है और मन नया शरीर ले
आता है।

७-जड़ का तो रूपान्तर होता है और चेतन का वेशान्तर होता है।

८—प्रेम आत्मा के साथ होता है, देह के साथ नहीं।

९—भाव में समता रखनी चाहिए, क्रिया में नहीं। क्रिया में
विषमता रहेगी ही।

१०—समदर्शी बनना चाहिए, समव्यवहारी नहीं। समव्यवहारी हो
तो संभव ही नहीं है।

संतो के उपदेश

१—सज्जनों का क्रोध और दुष्टों का प्रेम एक समान होता है
क्योकि सज्जनों का कोप पल भर का होता है और दुष्टों का
भी पल भर का होता है।

२—ईश्वर से कुछ मांगना नहीं चाहिए। वह स्वयं देता है। जल से भरे बादल स्वयं बरसते हैं. दानियों, साधुओं, सज्जनों का स्वभाव ही परोपकार होता है।

३—दुर्जनों द्वारा की गई निन्दा, अवज्ञा, अवहेलना और अपमान को शान्तिपूर्वक सह लेता है, उसे महात्मा ही समझो।

४—भक्त भगवान की ओर खिंचता है, लोग भक्त की ओर खिंचते हैं।

५—संगति का बड़ा असर मनुष्य पर पड़ता है। यह मन जिसके साथ रहता है, वैसा ही बन जाने की प्रवृत्ति रखता है।

६—इन्द्रियों से भगवान को जानना-पहचानना संभव नहीं फिर भी उनकी करुणा, अनुग्रह से उनकी प्रतीति अवश्य हो जाती है।

७—मन सफेद कपड़ा है, इसे जिस रंग में डुबावोगे वही रंग चढ़ जायेगा।

८—जिस प्रकार चंचल हाथी के सिर पर अंकुश मारने से स्थिर हो जाता है. उसी प्रकार चंचल मन पर विचार रूपी अंकुश मारने से स्थिर हो जाता है।

९—जल में नाव रहे तो हानि नहीं, परन्तु नाव में ज़ल नहीं रहना चाहिए। साधक ससार में रहे तो कोई हानि नहीं, परन्तु साधक के अन्दर ससार नहीं होना चाहिए।

१०—निशाना साधने के लिए पहले मोटी वस्तु पर साधना पड़ता है, पश्चात् सूक्ष्म पर भी साधा जा सकता है। वैसे ही मन स्थिर करने के लिए प्रथम साकार मूर्ति का ध्यान करे, पश्चात् निराकार में भी मन स्थिर हो जाता है।

११—पुण्य की तरह पाप को भी भगवदर्पण मत करो, नहीं तो वे अनन्त गुणा हो जायंगे। क्योंकि भगवदर्पण होने पर अनन्त गु फल होता है।

१२—प्रारब्ध को दोष लगाकर सत्कर्म और भजन से चित्त को हटाओ।

१३— धीरज को छोड़कर साधन का त्याग कभी मत करो।

सात बातें

भगवान्

१—भगवान् की प्राप्ति इच्छा से होती है।

२—भगवान् प्राप्त होने पर बिछुड़ते नहीं।

३—भगवान् की प्राप्ति जब होती है, पूरी होती है।

४—भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा होते ही पापों का नाश होने लगता है।

५—भागवान् को प्राप्त करने की साधना में शांति मिलती है।

६—भगवान् का स्मरण करते हुये मरने वाला सुख-शांति पूर्वक मरता है।

भोग

१—भोगों की प्राप्ति कर्म से होत इच्छा से नहीं होती।

२—भोग बिना बिछुड़े कभी नहीं।

३—भोगों की प्राप्ति सदा अधूर होती है।

४—भोगों को प्राप्त करने की होते ही पाप होने लगते हैं

५—भोगों को प्राप्त करने की स में अशांति बढ़ती है।

६ भोगों का स्मरण करते हुये वाला अशांति और दुःख मरता है।

७—भगवान् का स्मरण करते हुये मरने वाला निश्चय ही भगवान् को प्राप्त होता है।	७—भोगों का स्मरण करते हुये मरने वाला निश्चय ही नरकों में जाता है।

पूज्य श्रीभाईजी

● परमात्मा यहाँ हैं।

● परमात्मा अभी हैं।

● परमात्मा अपने में हैं।

● परमात्मा अपने हैं।

प्रतिदिन पालन करना

१—सूर्योदय के पूर्व ब्राह्म-मुहूर्त (४-४॥ बजे प्रातः) उठना। उठकर भगवान् का स्मरण करना तथा पृथ्वी माता को प्रणाम करना।

२—माता-पिता-गुरु आदि सभी बड़ों को प्रणाम करना। घर से दूर रहने वालों को मानसिक प्रणाम करना।

३—शौच-स्नान के पश्चात् संध्या तथा गायत्री मंत्र का जप करना। पश्चात् गीता, रामायण आदि का पाठ करना।

४—सबको भगवत् स्वरूप समझना और उसके हृदय में बैठे हुए भगवान् को नमस्कार करना।

५—कुछ समय (१५ मिनट) के अन्तर से भगवान् का स्मरण करना। भगवान् के नाम, रूप, लीला तथा गुण आदि का मन में स्मरण व दर्शन करना।

६—कम से कम प्रतिदिन आध घण्टे सत्संग या स्वाध्याय करना।
७—आलस्य त्यागकर कर्त्तव्य तथा कर्म को करते रहना।
८—तन-मन धन से यथासाध्य दूसरों की सेवा या सहायता करना
९—रात्रि में सोते समय दिन में हुई भूलों पर पश्चाताप करन
आगे न बन पड़े इसका दृढ़ निश्चय करना।

चाहिये

१—किसी का अहित नहीं करना। २—असत्य नहीं बोलना।
३—दूसरे का हक नहीं खाना। ४ क्रोध का त्याग करना
५—किसी की निन्दा नहीं करना। ६—मादक वस्तु का त्याग
७—अश्लील आचरण नहीं करना। ८ व्यर्थ समय नहीं गंवाना
९—स्त्री का नृत्य नहीं देखना। १०—कुसंग नहीं करना।

जीवन-अमृत

१—हर क्षण हर श्वासमें भगवान्‌का नाम-जप करनेपर सभी
पूर्ण हो जाते हैं।
२—गुरुजन और माता पिताकी सेवामें ही संसारके सभी
सुलभ हैं।
३—गो माताकी तृप्तिमें सभी देवोंकी प्रसन्नता है। अतः
संचयमें से गो-ग्रासके रूपमें कुछ अवश्य निकालें।
४—परोपकार ही पुण्य है, किसी को भी दुःख देना पाप है।

५—मनुष्यको उसका कर्म ही सुख या दुःख देता है। इस सृष्टिका आधार ही कर्म है। इसी कारणसे समझदार व्यक्ति अन्यको दोष नहीं देते।

६—स्त्रीके लिये पति ही एकमात्र गति है, उनकी प्रसन्नता ही भगवान्‌की पूजा है।

७—जब भी संकल्प करो शुभ ही करो, सभीका भला हो सोचो, तभी सर्व प्रकारसे मंगल होगा।

८—जो अपना सम्मान चाहते हैं, उन्हें सभीका सम्मान करना चाहिये।

९—सबसे उत्तम बदला क्षमा कर देना है।

१०—कर्तव्यपर दृढ़ रहना सर्वोपरि तप है जिससे भगवान् अनायास ही प्रसन्न होते हैं।

११—जिसकी आमदनीसे खर्च कम हो, उसके पास निश्चित ही पारस पत्थर है।

श्रीगणेशजीकी वन्दना

गाइये गणपति जगवंदन। शंकर-सुवन भवानी-नंदन॥ १॥
सिद्धि-सदन, गज-वदन, विनायक। कृपा-सिंधु, सुन्दर, सब लायक। २॥
मोदक-प्रिय मुद-मंगल-दाता। विद्या बारिधि, बुद्धि-विधाता॥ ३॥
मांगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे॥ ४॥

श्रीराम-स्तुति

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं।
नवकंज-लोचन, कंजमुख, कर कंज, पद कंजारुणं॥

कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील-नीरद सुन्दरं।
पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक-सुतावरं।
भजु दीनबंधु दिनेश दानव दैत्यवंश-निकन्दनं।
रघुनन्द आनन्दकन्द कौशलचन्द दशरथ नन्दनं।
सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं।
आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषणं॥
इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनं।
मम हृदय-कंज निवास कुरु, कामादि खल-दल गंजनं॥

चौबीस नमस्कार-मन्त्र

१. ॐ केशवाय नमः। २. ॐ नारायणाय नमः। ३. ॐ म
नमः। ४. ॐ गोविन्दाय नमः। ५. ॐ विष्णवे नमः। ६. ॐ मधु
नमः। ७. ॐ त्रिविक्रमाय नमः। ८ ॐ वामनाय नमः। ९.
नमः। १०. ॐ हृषीकेशाय नमः। ११. ॐ पद्मनाभाय नमः।
दामोदराय नमः। १३ ॐ संकर्षणाय नमः। १४. ॐ वासुदेवा
१५. ॐ प्रद्युम्नाय नमः। १६ ॐ अनिरुद्धाय नमः। १७. ॐ पुरुष
नमः। १८ ॐ अधोक्षजाय नमः। १९. ॐ नरसिंहाय नमः।
अच्युताय नमः। २१. ॐ जनार्दनाय नमः। २२ ॐ उपेन्द्राय
२३ ॐ हरये नमः। २४. ॐ श्रीकृष्णाय नमः।

सूर्यनमस्कारके द्वादशमन्त्र

१. ॐ मित्राय नमः। २. ॐ रवये नमः। ३. ॐ सूर्या
४. ॐ भानवे नमः। ५ ॐ खगाय नमः। ६. ॐ पूष्णे नमः।

हिरण्यगर्भाय नमः। ८. ॐ मरीचये नमः। ९. ॐ आदित्याय नमः। १०. ॐ सवित्रे नमः। ११. ॐ अर्काय नमः। १२. ॐ भास्कराय नमः।

नित्य पठनीय श्रीगीताजीके चुने हुए श्लोक

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति॥ अ० १ श्लो० २५

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। अ० २ श्लो० ७॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ अ० ३ श्लो० ३०॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥ अ० ४ श्लो० ६॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ अ० ५ श्लो० २९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ अ० ६ श्लो० ३०॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ अ० ७ श्लो० १

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ अ० ८ श्लो० ७

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ अ० ६ श्लो० २

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ अ० १० श्लो०२

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ अ० ११ श्लो०५

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ अ० १२ श्लो०

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ अ० १३ श्लो० १

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ अ० १४ श्लो० २

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम ॥ अ० १५ श्लो० १

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ अ० १६ श्लो० २

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ अ० १७ श्लो० ३॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ अ० १८ श्लो० ६६॥
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

विष्णुसहस्रनामके श्लोक

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा।८॥

सम्पूर्ण विधि रूप धर्मों में इसी धर्म को सबसे बड़ा मानता हूँ कि मनुष्य अपने हृदय कमल में विराजमान पुण्डरीकाक्ष भगवान् वासुदेव का भक्ति पूर्वक गुण-संकीर्तन-रूप स्तुतियों से सदा अर्चन करे॥८॥

ह्रीं श्रीं श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः॥७८॥

भक्तों को श्री देते हैं इसलिए श्रीद हैं। श्रीके ईश होने से श्रीश हैं। श्रीमानों में नित्य निवास करते हैं, इसलिए श्रीनिवास हैं। (यहाँ) श्री शब्द से श्रीमान् लक्षित होते हैं।

इन सर्वशक्तिमान् ईश्वर में सम्पूर्ण श्रियां एकत्रित हैं, इसलिये ये श्री निधि हैं।

समस्त भूतों को उनके कर्मानुसार विविध प्रकार की श्रियां देते हैं, इ
श्रीविभावन हैं।

सम्पूर्ण भूतों की जननी श्रीको छाती में धारण करने के कारण श्री धर
स्मरण, स्तवन और अर्चन करने वाले भक्तों को श्रीयुक्त करते हैं, इ
श्रीकर हैं।

कभी नष्ट न होनेवाले सुख का प्राप्त होना ही श्रेय है; और वह परमा
ही स्वरूप है, इसलिए वे श्रेय हैं।

भगवान् में श्रियाँ हैं, इसलिए वे श्रीमान् हैं।

तीनों लोकों के आश्रय होने से लोकत्रयाश्रय हैं ॥७८॥

श्रीरासपञ्चाध्यायीका गोपी-गीत

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥६॥

हे प्राणेश्वर ! जो मनुष्य जलते हुये प्राणियों को जीवन दान करने
ब्रह्मज्ञ पुरुषों के द्वारा भी स्तुत, समस्त पापों के नाशक, सुनने मात्र से
मङ्गलदायक, प्रेमरूपी परम सम्पत्ति दायक एवं अत्यन्त विस्तृत तुम्हारे लीला
रूप अमृत का पृथ्वी पर कीर्तन करते हैं वे (जगत् में) बहुत बड़े दानी लोग
(यह तो तुम्हारी लीला-कथा का माहात्म्य है, तुम्हारे दर्शन की महिमा कौन क
इसीलिए हमारी प्रार्थना है कि परमदुर्लभ दर्शन देकर हमें कृतार्थ करो।)

यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषांनः ॥ १०-२६-१६ ॥

प्रिय ! तुम्हारे चरण-कमल अत्यन्त सुकुमार हैं। हम उन्हें अपने उरोजों पर भी बहुत धीरे से रखती हैं, हमें डर लगता रहता है कि हमारे कठोर उरोजों से उन कोमल पद-कमलों को कहीं चोट न लग जाय। उन्हीं सुकुमार चरणों से आज हमसे छिपकर तुम वन-वन भटक रहे हो ! कंकड़-पत्थरों की नोक लगाकर उनमें बड़ी पीड़ा हो रही होगी ? हमारी बुद्धि इसी चिन्ता से व्याकुल होकर चक्कर खा रही है। प्यारे ! हमारे जीवन के जीवन तो एकमात्र तुम्हीं हो।

गीतोक्त स्तुतिः

गजाननं भूतगणादिसेवितं, कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं, नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥१॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वांप्रपन्नम् ॥२॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।३।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।४॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपं ॥५।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्।६॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।७।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥
अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभि
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ।
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥
कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥
सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्योलोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥१६॥
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।२०॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥२१॥

॥ श्री कृष्णार्पणमस्तु ॥

चतुः श्लोकी भागवत

पाठ - माहात्म्य

श्रीस्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें बतालाया गया है—

'जो वाक्य ज्ञान, विज्ञान, भक्ति एवं इनके अङ्गभूत चार प्रकार के साधनों को प्रकाशित करनेवाला है तथा जो माया का मर्दन करने में समर्थ है, उसे 'श्रीमद्भागवत' समझो। श्रीमद्भागवत अनन्त अक्षर-स्वरूप है; इसका नियत प्रमाण भला कौन जान सकता है। पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी के प्रति चार श्लोकों में इसका दिग्दर्शन कराया था।'

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥२२॥

सृष्टि के पूर्व भी मैं ही था; मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं था और (सृष्टि उत्पन्न होने के बाद) जो कुछ भी यह दृश्यवर्ग है, (वह मैं ही हूँ।) जो सत् (अक्षर) असत् (क्षर) और उससे परे (पुरुषोत्तम) है, (वह सब मैं ही हूँ) (तथा) सृष्टि की सीमा के बाद भी मैं ही हूँ (एवं इन सबका नाश हो जाने पर) जो कुछ बच रहता है, वह (सब भी) मैं (ही) हूँ।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद् विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥३३।

जैसे आभास अर्थात् किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब वास्तव में कोई वस्तु नहीं
प्रतीतिमात्र ही है, (उसी प्रकार) (मुझ) परमार्थ वस्तुरूप परमात्मा के अति
परमात्मा में जो कुछ प्रतीत होता है, (वह वास्तव में कुछ नहीं है) एवं
(विद्यमान होते हुये भी) तम अर्थात् राहु ग्रह की प्रतीति नहीं होती, (इसी प्र
वास्तव में सत् होते हुये भी जो मुझ परमात्मा की) प्रतीति नहीं होती --यह
प्रकार की ही मेरी माया है--यों समझना चाहिए।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥३४॥

जैसे प्राणियों के छोटे-बड़े शरीरों में (आकाशादि पाँच) महाभूत प्रविष्ट
हैं (और) प्रविष्ट नहीं भी हैं, उसी प्रकार उनमें मैं प्रविष्ट हूँ भी (और वास्तव
उनमें मैं प्रविष्ट नहीं हूँ।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥३५।

परमात्मा के तत्व को जानने की इच्छा वाले मनुष्य को विधि रूप से अ
'परमात्मा ऐसे हैं' 'परमात्मा ऐसे हैं'—इस भाव से तथा निषेध रूप से अ
'परमात्मा ऐसे भी नहीं', 'परमात्मा ऐसे भी नहीं', इस भाव से इतना ही जा
आवश्यक है कि (परमात्मा ही) सब देश में (और) सब काल में विद्यमान हैं।

श्रीरामावतार

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप विचारी।।

लोचन अभिरामा तन घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन विसाला सोभासिंधु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरि केहि विधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

श्री अयोध्या दर्शन एवं श्री सरयूजीकी स्नान-महिमा

या गतिर्योगयुक्तानां वाराणस्यां तनु त्यजन्।
सा गतिः स्नानमात्रेण सरय्वां हरिवासरे॥

"जो गति योगियों को काशी में शरीर त्यागने से होती है, वह एक एकादशी को श्री सरयूजी के स्नान मात्र से ही मिलती है।"

पुष्करे तु नरो गत्वा कार्तिक्यां कृत्तिका दिने।
तत्फलं समवाप्नोति सरयू दर्शने ते॥

"जो फल कृत्तिका नक्षत्र से युक्त कार्तिक की पूर्णिमा में पुष्कर तीर्थ
से मिलता है, वह फल सरयूजी के दर्शन मात्र से मिलता है।"

निमिषं निमिषार्धं वा प्राणिनां रामचिन्तनम्।
यत्र कुत्र स्थितो जीवो ह्ययोध्यां मनसा स्मरेत्॥
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तरशतैरपि।
जलरूपेण ब्रह्मैव सरयू मोक्षदा सदा॥

"जीव जहाँ कहीं भी रहकर एक पल या आधा पल श्रीरामजी का
करे और मन से श्रीअयोध्याजी का स्मरण करे उसका पुनर्जन्म नहीं होगा,
दाता ब्रह्म ही सरयू-जल होकर सदा विराजमान हैं।"

निलाम्बुजश्यामलकोमलांगम् सीता समारोपितवामभागम्
पाणौ महाशायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्

मानस का परम शान्तिदायक दैनिक पाठ

॥ बालकाण्ड ॥

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती
सीताराम सीताराम

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी।
जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन।
बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरे चरण जनि भोरें॥

॥ अयोध्याकाण्ड ॥

सीताराम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़हि अनुग्रह तोरें ॥सी०।
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥सी०।
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीन दयाल अनुग्रह तोरें ॥सी०॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू ॥सी०॥
जोरि पाणि वर मागउँ एहू। सीय रामपद सहज सनेहू ।सी०॥

॥ अरण्यकाण्ड ॥

जो कोशलपति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना ॥सी०
अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥सी०।
यह वर मागेउँ कृपा निकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥सी०॥

॥ किष्किन्धाकाण्ड ॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरे ॥सी०॥
सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे ॥सी०॥
अब प्रभु कृपा करहु एहिं भाँति। सब तजि भजन करौ दिन राति। सी०

॥ सुन्दरकाण्ड ॥

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी ॥सी०॥
अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे ।.सी०॥
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा शिव मन भावनी ॥सी०॥

॥ लंकाकाण्ड ॥

कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति हारि।
सब सर्व गत सर्व उरालय। बसहु सदा हम कहुँ प्रतिपालय॥

॥ उत्तरकाण्ड ॥

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहीं निस्तार कलप सतकोरी।
असरन सरन विरदु संभारी। मोहि जनु तजहुँ भगत हितकारी।
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाऊ कहा तजि पद जलजाता।
बालक ज्ञान बुद्धि बल हीना। राखहुँ सरण नाथ जनदीना।
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सकल करि लेखौं।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

मनका तद्रूप होना क्या है ?

(ब्रह्मलीन पूज्य श्री जयदयालजी गोयन्दका के गीतातत्त्वि
टीका अध्याय ५ श्लोक १७ वें से उद्धृत)

एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा को ही सत्य वस्तु समझकर तथ
अनात्म वस्तुओं के चिन्तन को सर्वथा छोड़कर, मन को परमात्मा के स
निश्चल स्थित करने के लिए उनके आनन्दमय स्वरूप का चिन्तन करे।
आनन्द की आवृत्ति करता हुआ ऐसी धारणा करे कि पूर्ण आनन्द, ध्रुव
परम आनन्द, नित्य आनन्द, बोध स्वरूप आनन्द, ज्ञान स्वरूप आनन
आनन्द, महान् आनन्द, अनन्त आनन्द, सम आनन्द, अचिन्त्य आनन्द,
आनन्द, एकमात्र आनन्द ही आनन्द परिपूर्ण है, आनन्द से भिन्न अन्य
ही नहीं है—इस प्रकार निरन्तर मनन करते-करते सच्चिदानन्दघन पर
मनका अभिन्न भाव से निश्चल हो जाना मन का तद्रूप होना है।

॥ श्रीराधा-कृष्णाभ्याम् नमः ॥

राधिकारमण अम्बुजनयन, नन्दनन्दन नाथ हे।
गोपिका प्राण मन्मथमथन, विश्वरञ्जन कृष्ण हे॥
श्रीराधा - माधव - चरण बन्दौ बारम्बार।
एक तत्व दो तनु धरै नित-रस-पारावार॥

"तव प्रताप बल नाथ"

सर्वशक्तिमान् भगवान्की अनन्त असीम अहैतुकी कृपापर विश्वास करो।

मुझमें यदि किसीको कोई अच्छी बात दिखायी देती है तो वह भगवत्कृपाका ही चमत्कार है। मेरे पास सचमुच कोई भी साधन सम्पत्ति या किसी प्रकार की भी सिद्धि नहीं है। जो कुछ है—केवल नित्य सहज सुहृद् श्रीभगवान्की कृपाका ही बल है। बस, वह कृपा ही सर्वस्व है—

सकल साधना-सिद्धि-शून्य, है केवल कृपा सहारा।
कृपा, कृपा, बस कृपा एक ही, है सर्वस्व हमारा॥

इसलिए मुझसे जो कोई भी साधन पूछते हैं, मैं उनसे यही कहता हूँ —भाई, भगवान् की अहैतुकी कृपा पर भरोसा करो: उसी का आश्रय करो। भगवान् की कृपाशक्ति सारी शक्तियों की सिरमौर है—जहाँ कृपाशक्ति प्रकट होती है, वहाँ सारी शक्तियाँ उसकी सहायता तथा अनुगत हो जाती हैं।

जा पर कृपा राम कर होई। तापर कृपा करहिं सब कोई॥

तुम भी भगवान् की इस अहैतु की कृपा पर विश्वास करो। ऐसा विश्वास करो—तुम पर भगवान् की असीम अनन्त कृपा है, तुम उस कृपा-सुधा-सागर में डूब रहे हो। तुम्हारा यह विश्वास जितना ही दृढ़ और प्रत्यक्ष होगा, उतना ही तुम उस महती-कृपा का अनुभव प्राप्त कर सकोगे।

१—सबमें भगवान्‌को देखें कि भगवान् हैं ही।

२—भगवत्कृपापर अटूट विश्वास करें।

३—भगवन्नामका अनन्य आश्रय लें।

४—नेत्रोंसे भगवान्‌के चरणोंका दर्शन करें।

वार-बार निश्चय करो—

१—मुझपर सर्वशक्तिमान् भगवान् की अनन्त कृपा है।

२—वे भगवान् मुझपर अहैतुक प्रेम करते हैं।

३—उनकी कृपाशक्तिसे मेरे सारे विघ्न-बाधा नष्ट हो गये और हुए जा रहे हैं।

४—उनकी कृपाशक्तिके प्रकाशमें मेरे समीप किसी प्रकारका अन्धकार नहीं आ सकता।

५—उनकी कृपाशक्तिसे मेरे सारे दुर्गुण-दुर्विचार नष्ट हो गये हैं।

६—उनकी कृपाशक्तिसे मुझमें विश्वास, प्रेम शान्ति, समता आदि उत्पन्न हो गये हैं।

७—उनकी कृपाशक्तिसे मेरी वृत्ति संसारसे हटकर उन्हींमें रमने लगी है।

८—उनकी कृपाशक्तिसे मेरा भविष्य परमोज्वल हो गया है।

९—मैं समस्त पाप-तापसे मुक्त होकर उनके चरण-कमलोंमें निश्चय ही पहुँच जाऊँगा।

—पूज्य श्रीभाईजीके पुराने पत्रोंसे

एक प्रार्थना

प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि में।

'मैं आपको नमस्कार करता हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये और अपने चरण-कमलोंकी भक्ति मुझे प्रदान कीजिये।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संत-महिमा

(राग-बसन्त—तीन ताल)

संत महा गुनखानी।
परिहरि सकल कामना जगकी, राम-चरन रति मानी॥
परदुख दुखी, सुखी परसुखतें, दीन-बिपति निज जानी।
हरिमय जानि सकल जग सेवक, उर अभिमान न आनी॥

मधुर, सदा हितकर, प्रिय साँचे, वचन उचारत ज्ञानी।
विगतकाम मद-मोह-लोभ नहि, सुख-दुख सम कर जानी॥
राम-नाम पीयूष पान रत, मानद, परम अमानी।
पतितनको हरिलोक पठावन, जग आवत अस ज्ञानी॥
—भजन संग्रह पाँचवें भागसे

सारे संसारमें तीन चीज

१—हम जो चाहते हैं वह होता नहीं।

२—जो होता है वह भाता नहीं (पसंद नहीं होता)।

३—जो भाता है वह रहता नहीं।

आठ प्रधान दोषोंके नाशके उपाय

(नित्यलीलालीन पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके लेखसे)

१. आसक्ति—भोग·पदार्थोंमें मनका फँसा रहना।

२ काम—इस लोक तथा परलोकके भोगोंकी कामना।

३. क्रोध—मनके कुछ भी विरुद्ध होनेपर उसे सह नहीं सकना और विवेक खोकर चाहे सो कह बैठना।

४. लोभ—अधिकसे अधिक भोग मिलनेके लिये ललचाते रहना।

५. अभिमान—किसी भी बातको लेकर मनमें बड़ेपनका अभिमान करना।

६ वैर—किसीको भी अपना शत्रु मानना।

७. हिंसा—मन-वचन-शरीरसे दूसरेको दुःख देना और उसका अहित करना।

८ पर·दोष-दर्शन—सदा दूसरोंके दोष देखते रहना।

——इन दोषोंके नाशके लिए क्या करें ?

१. भगवान्‌के भजनमें आसक्ति करें।

२ भोगोंमें दोष-दुःख देखकर उनसे वैराग्यकी तथा भगवत्प्राप्ति की कामना करें।

३. अपने दोषोंपर क्रोध करें। दूसरोंपर क्षमा करें। क्रोध आनेपर बोलें नहीं; अपने मनकी कामनाको छोड़ दें।

४. भगवान्‌के भजनका खूब लोभ करें, जितना हो उतना ही थोड़ा।

५. सबसे विनय-नम्रताका व्यवहार करें। सबमें भगवान् समझकर सबका आदर करें।

६ सबसे प्रेम करें। सबका भला चाहें।

७ अपने दोषोंकी हिंसा करें।

८ दूसरोंके गुण तथा अपने दोष देखें।

पूजाके सोलह उपाचार

१ पाद्य—एक चमची जल छोड़ना। —पाद्यं समर्पयामि।

२. अर्घ्य—एक चमची जल जरा चन्दन डालकर छोड़ना। अर्घ्यं स०।

३. आचमन—एक चमची जल छोड़ना। आचमनीयं स०।

४. स्नान—एक चमची जल थोड़ा-सा कर्पूर मिलाकर छोड़ना। स्नानं स०

५. वस्त्र—वस्त्र देना, वस्त्र पहने हों तो फूल चढ़ा देना। वस्त्रं स०।

६. गन्ध—चन्दन चढ़ाना। गन्धं स०।

७. पुष्प—फूल या फूलमाला चढ़ाना। पुष्पं स०।

८. तुलसीदल—तुलसीपत्र चढ़ाना। तुलसीदलं स०।

९. धूप—धूप देना। धूपं आघ्रापयामि।
१०. दीप—दीपक दिखाना। दीप दर्शयामि।
११. नैवेद्य—भोग लगाना। नैवेद्यं निवेदयामि।
१२. आचमन—आचमन कराना। पुनः आचमनीयं स०।
१३. फल - फल चढ़ाना। फलं स०।
१४. ताम्बूल—पान-सुपारी-इलायची देना। ताम्बूलं स०।
१५. आरती - आरती करना। आर्तिक्यं स०।
१६. पुष्पाञ्जलि—हाथमें फूल लेकर चढ़ाना। पुष्पाञ्जलिं स०।

पूज्य श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अमृत-वचन

१. सबमें भगवान्‌को देखें कि सब भगवान् ही हैं।
२. भगवत्कृपापर अटूट विश्वास करें कि भगवत्कृपा है ही।
३. भगवन्नामका अनन्य आश्रय लें। जीभसे नाम जप करते रहें।
४. मनसे ध्यान करें।
५. नेत्रोंसे भगवान्‌के चरणोंका दर्शन करें।
६. किसीको कष्ट न दें।

अपनी शक्तिका सदुपयोग करें

अपने पास शक्ति, समय, सामग्री और समझ जो कुछ जितनी है, अधिक है या कम—इससे कोई प्रयोजन नहीं, उसको सम्पूर्ण प्राणिमात्रके हितमें लगा दें। सब भगवान्‌की ही प्रजा है, अतः सबके हितमें अपनी शक्ति आदि लगा देंगे तो भगवान्‌की जो शक्ति है, वह हमें मिल जायगी।

('कल्याण' वर्ष ४७ संख्या ८ से)

ऐसा स्वभाव बनाइये

चुप कबीरा बोले मत, पड़दा किसीका खोले मत।
पड़दे-पड़दे अन्तर है, कहीं हीरा कहीं पत्थर है॥

'दूसरेके दोषोंको प्रकट करनेके बदले सुहृद बनकर उनको ढको। सूई छेद करती है, पर सूत अपने शरीरका अंश देकर भी उस छेदको भर देता है। इसी प्रकार दूसरेके छिद्रोंको ढकनेके लिये अपनी शक्ति लगा दो, पर छिद्र न करो। धागा बनो, सूई नहीं। इस प्रकारका स्वभाव बनाना आपके हाथकी बात है।

परमशान्तिप्रदायक तीन साधन

(स्वामीजी—श्रीरामसुखदासजी महाराजके सत्सङ्गसे संग्रहीत)

(१) गीता अध्याय ९ श्लोक १४ को कण्ठस्थ करना, प्रेमपूर्वक कीर्तन एवं प्रणाम करनेका दृढ़तासे स्वभाव बनाना।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥ १४॥

'वे दृढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुये तथा मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हुये और मेरे को वारम्वार प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यान में युक्त हुये, अनन्य भक्ति से मुझे उपासते हैं' ॥१४॥

(२) परम सेवा के लिये सदा उत्साहपूर्वक तत्पर रहना, नाम-जप-कीर्तन, गीता-पाठ आदि सुनाने के द्वारा किसी भी मरणासन्न व्यक्ति की वृत्ति अंतकाल तक भगवान् के चरणों में लगी रहे उसके लिए तत्परता से प्रयत्न करते रहना परम सेवा है।

(३ शयनकालको भजन बनाना

मैं भगवान् का हूँ, शरीर भी भगवान् का ही है अतः नींद लेने का लक्ष्य रखकर भजन करने का ही उद्देश्य रखना। इतनी देर तक चलते-फिरते बैठक भजन किया है, अब लेटकर भजन करना है; भगवान् की भूल न हो जाय। ध्या सहित जप करते रहना है। जप करते-करते नींद आ जाय तो वह नींद भी भज ही है।

दो माला जपना सदा, षोड़श मन्त्र महान।
सब सन्तोंका मत यही, करो प्रेम रस पान।

सावधान

"आये थे हरिभजनको, ओंटन लगे कपास"

'पृथ्वीमें जितने भी धान्य-चावल, जौ गेहूँ, सुवर्ण, पशु और स्त्रिय हैं, सब के-सब मिलकर एक मनुष्यकी तृप्तिके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं ऐसा मानकर तृष्णाका शमन करे। क्योंकि भोग पदार्थोंके उपभोगसे कामना कभी शान्त नहीं होती. बल्कि जैसे घीकी आहुति डालनेपर आग और भड़क उठती है वैसे ही भोगवासना भी भोगोंसे प्रबल होती जाती है।'

"जीवन का कर्तव्य" से

सदा साथ रहनेवाले तो केवल एक परमात्मा ही हैं

१ परमात्मामें नित्यसिद्ध अपनापन है, केवल जीव भूल गया है।	१ संसारमें अपनापन है ही नहीं, केवल जीवने भूलसे मान लिया है।

२ परमात्माका कभी वियोग हो ही नहीं सकता।	२ संसारके साथ कभी संयोग रह ही नहीं सकता।
३. परमात्मा जीवको कभी छोड़ ही नहीं सकते।	३. संसार जीवके साथ कभी रह ही नहीं सकता।
४. परमात्मामें आनन्द-ही-आनन्द है, दुःख है ही नहीं।	४. संसारमें दुःख - ही - दुःख है, आनन्द है ही नहीं।

इसलिये चार बातें नित्य याद रखने योग्य हैं——

१—मैं भगवान्‌का हूँ। २—मैं संसारका नहीं हूँ।

३—भगवान् मेरे हैं। ४ - संसार मेरा नहीं है।

परम पूज्य श्रीस्वामीजी रामसुखदासजी महाराजके एक प्रवचनका सारांश

प्रतिकूलतामें जितना लाभ होता है उतना अनुकूलतामें हो सकता नहीं –हुआ नहीं। जिसके जीवनमें प्रतिकूलता आवे उसको अपनेपर भगवान्‌की विशेष एवं महान् कृपा समझनी चाहिए। प्रतिकूलतामें प्रसन्न रहना 'सम चित्तत्वम्' की जननी है :—

नित्यं च सम चित्तत्वमिष्टा निष्टोपपत्तिषु (गीता १३। ९)

प्रतिकूलता की प्राप्ति—यह तो भगवत-जयंती है। भगवान् की बड़ी भारी कृपा है। यह अवसर हरेक को नहीं मिलता। जिसको प्रतिकूलता में भगत्कृपा दिखने लग जाय वह तो विशेष भाग्यशाली है। गीता अध्याय २ श्लोक ६४-६५ के अनुसार जब प्रसन्नचित्त वाले योगी की बुद्धि भी शीघ्र स्थिर हो जाती है तब जिसे दुःख एवं प्रतिकूल परिस्थिति में आनन्द एवं प्रसन्नता हो उसकी बुद्धि कितनी जल्दी स्थिर होगी।

दुःखमें भगवान्की शुद्ध कृपा

दुःखका हमपर महान् उपकार है। उसके उपकारसे हम उऋण नहीं सकते। माता कुन्ती दुःखके इस तत्वको जानती थी तभी उसने भगवान् श्रीकृष्णसे दुःखका—शाश्वत विपत्तिकी प्राि वरदान मांगा।

दुःख एवं प्रतिकूलतासे हमारी रुचि नहीं, सम्मति नहीं—वे भगवान्की शुद्ध कृपा है। कोई हमसे द्वेष करता है, हमें दुःख प्रसन्न होता है तो उसका उपकार मानें, क्योंकि हमारा कुछ खर्च हुआ नहीं, मुफ्तमें उसकी प्रसन्नता प्राप्त हो गयी। अनुकूलता प्रतिकूलता—दोनों संसारका स्वरूप है। इनमें सम रहना मुक्ति है इनसे राजी-नाराज होना बंधन है।

भक्तकी चाह

मेरी चाही मत करो, मैं मूरख, अज्ञान।
तेरी चाही में प्रभो, है मेरा कल्याण।

सेवा सूत्र

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाका हृदयसे त्याग।
समय, समझ, शक्ति एवं सामग्री द्वारा समाजकी सेवा।

सेवा भाव

(१) सेवा भाव असीम होता है, क्रिया सीमित होती है।
(२) सेवाभावी द्वेषका दमन करता हुआ अपने त्यागपूर्ण व्यवा प्रेमका प्रसार करता है।

(३) सेवाभावी अपना नाम और चित्र नहीं चाहता; वह तो अपनी तुच्छ सेवासे समाजका हित चाहता है।

(४) सेवाभावीका लक्ष्य व्यक्तिगत या दलगत प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी नहीं होती। उसे तो सकुचित स्वार्थकी भावनासे ऊपर उठकर समाजके उत्थानकी लगन बनी रहती है।

सार बात

(कण्ठस्थ कर लेवें)

सबमें हरि है, सब हरि में है, सब हरि के, लीला के रूप।
बनो सभी के सेवक, सबके सुखद, हितैषी, सुहृद अनूप॥

कृपया ठिकाना नोट कर लीजिये

प्रश्नकर्ता भैया, श्रीभगवान्का ठिकाना बताते जाइये।

उत्तर — वैसे तो परमात्मा सब जगह है, फिर भी मैं तुम्हें चार स्थान बताता हूँ जहाँ वे मिलते ही हैं--नोट कर लो—

१. तत्त्वज्ञ संत महापुरुषों में, ('मयि ते तेषुचाप्यहम्' गीता ९।२९)
२. प्राणीमात्रके हृदयमें, 'सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो' गीता १५ /१५)
३. सभी सत्कर्मोंमें, ('नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्' गीता ३ / १५)
४. दीन, दुःखी, आतुर, अपाहिज और अरक्षितोंमें, (राम गरीब निवाज)

'मणि माणिक महँगे किये सस्ते जल तृण नाज।
तुलसी तब मैं जानियो राम गरीब निवाज॥'

प्रश्नकर्ता— धन्यवाद ! अब मैं भी सबको ठिकाना बताता रहूँगा।

मानवमात्रके लिये ग्यारह नियम

(पूज्य श्रीशरणानन्दजी महाराजकी पुस्तकसे)

१. आत्म-निरीक्षण, अर्थात् प्राप्त विवेकके प्रकाशमें अपने दोषोंको देखना।
२. की हुई भूलको पुनः न दोहरानेका व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना।
३. विचारका प्रयोग अपनेपर और विश्वासका दूसरोंपर, अर्थात् न्याय अपनेपर और प्रेम तथा क्षमा अन्यपर करना।
४. जितेन्द्रियता, सेवा, भगवच्चिन्तन और सत्यकी खोजद्वारा अपना निर्माण करना।
५. दूसरोंके कर्तव्य को अपना अधिकार, दूसरोंकी उदारताको अपना गुण और दूसरोंकी निर्बलताको अपना बल न मानना।
६. पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावनाके अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव, अर्थात् कर्मकी भिन्नता होनेपर भी स्नेहकी एकता रखना।
७. निकटवर्ती जन-समाजकी यथाशक्ति क्रियात्मक रूपसे सेवा करना।
८. शारीरिक हितकी दृष्टिसे आहार विहारमें संयम तथा दैनिक कार्योंमें स्वावलम्बन रखना।
९. शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहंको अभिमान शून्य करके अपनेको सुन्दर बनाना।
१० सिक्केसे वस्तु, वस्तुसे व्यक्ति, व्यक्तिसे विवेक तथा विवेकसे सत्यको अधिक महत्त्व देना।
११ व्यर्थ-चिन्तनके त्याग तथा वर्तमानके सदुपयोग द्वारा भविष्यको उज्ज्वल बनाना।

प्राथेना

(प्रार्थना साधकके विकासका अचूक उपाय है
तथा आस्तिक प्राणीका जीवन है)

मेरे नाथ !

आप अपनी सुधामयी, सर्वसमर्थ, पतितपावनी अहैतुकी कृपासे दुःखी प्राणियोंके हृदयमें त्यागका बल एवं सुखी प्राणियोंके हृदयमें सेवाका बल प्रदान करें, जिससे वे सुख-दुःखके बन्धनसे मुक्त हो आपके पवित्र प्रेमका आस्वादन कर कृतकृत्य हो जायँ।

ॐ आनन्द ॐ आनन्द ॐ आनन्द

प्रार्थना

मेरे नाथ !

आप अपनी सुधामयी, सर्वसमर्थ, पतित-पावनी अहैतुकी कृपासे मानव-मात्रको विवेकका आदर तथा बलका सदुपयोग करनेकी सामर्थ्य प्रदान करें एवं हे करुणासागर ! अपनी अपार करुणासे शीघ्र ही राग-द्वेषका नाश करें। सभीका जीवन सेवा-त्याग-प्रेमसे परिपूर्ण हो जाय।

ॐ आनन्द ॐ आनन्द ॐ आनन्द

मन-बुद्धि के भीतर ठसठस नित्य-निरन्तर भर ही रखें

पूज्य श्रीदामोदर दासजी डालमियाके सत्सङ्गसे)

१. नीयत सोलह आना अच्छी रखनी। गीता १८। ६६
२ अति उत्तम व्यवहार करना। तीन बातें होनेसे व्यवहार उत्तम होता है १. अपनापन २ पहचान, ३ कद्र (आदर) १२। ४

३. भगवद्बुद्धि रखते हुए अपने बड़ोंके न्याययुक्त वचनोंका सद्
पालन करना। १८।५

४. कमखर्चकी आदत डालना। ५।२

५ भगवद्बुद्धि— ६।३

परमात्मामय है ही सब कुछ।

६ अर्पण – ६।२

आपकी शक्तिसे ही हो रहा है।

आपके लिये ही हो रहा है।

आपका है ही सब कुछ।

७. विधान— १८।६

आपकी मुट्ठीसे ही आता है।

परम हितके लिये ही आता है।

८. भगवान्का नाम लेकर प्राणीमात्रके लिये प्रार्थना १२।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हे प्रभु! आपके बलसे ही आपका नाम अनन्त कोटि ब्रह्माण्डकी तरफसे लिया गया है। इसलिये कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका आपके चरणोंमें श्रद्धा, प्रेम, भजन, निष्काम भाव, गीतामय जीवन बढ़ता ही जावे और अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका सब समय श्रीगीताजोकी चर्चामें ही बीते।

सब प्रभुकी शक्तिसे ही हो रहा है।
सब परमात्मा ही है। बारम्बार प्रणाम।

मेरा सब कर्मबीज परमात्मा ही है।
अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका सब कर्मबीज परमात्मा ही है।
प्रभुकी कृपा असीम-असीम है ही।
चेतन भावनाशक्तिमें महान्-महान् बल है।
यही दर्शन है! यही जीवन्मुक्ति है!!

भगवान्

१. परमात्मा निराकार है, चेतनमय है, अविनाशी है, व्याप्त है।
(गीता ६। ४)

२. भगवान् साकार प्रकट है, चेतनमय है, अविनाशी है, अन्तर्यामी तथा व्याप्त है।

३. भगवान्का वचन (श्रीगीताजी) चेतनमय है, अविनाशी है, व्याप्त है।

(उपरोक्त बातें भगवान्के संकल्पके भीतरकी नहीं हैं।)

भगवान्का संकल्प

१. भगवान्के संकल्पसे ही सारी सृष्टिकी रचना हुई है।

२. परमात्मा ही सबमें ओत-प्रोत हैं। ६। ४

३. परमात्मा ही हिलते और बोलते हैं।

४. अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड (सारी सृष्टि) नाशवान् है, क्षणभंगुर है, छायावत् है।

५ अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके भीतर तीन चीजें हैं—क्रिया, पदार्थ और

प्राणी। (प्राणीमें देवयोनि, मनुष्ययोनि और तिर्यक् योनि है जिसमें पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि हैं)।

भगवान् राम वैकुण्ठ धाममें विराजमान हैं।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड भी वहीं बैठे हैं।

सब रामरूप ही है।

सबके सिरपर भगवान् रामका हाथ है।

सब गद्‌गद् हो रहे हैं।

सबको सदाके लिये बारम्बार प्रणाम है।

"तव प्रताप बल नाथ" (पाँच बार)

आपकी शक्तिसे सबको सुना दिया है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

महाप्रयाणाभिमुख रोगीके पास बैठकर हँसते हुए कहना चाहिये।

१—हँसते-हँसते जाइये।

२—हँसाते-हँसाते जाइये। आपके लिये यह महान् आनन्दका समय है। निश्चय रखिये—आप भगवान्के परमधाममें पधार रहे हैं इसमें जरा भी सन्देह मत कीजिये। आपके लिये यह बड़ा ही उत्तम समय है।

३—भगवान् अपने अखण्ड आनन्दमें ओतप्रोत करनेके लिये ही बुला रहे हैं। और कोई हेतु है ही नहीं।

४—यहाँका संयोग-वियोग परम आनन्दके लिये ही होता है।

५—एक भगवान्‌की ही भावना ठसाठस भरी रखिये।

६—दृढ़ निश्चय रखिये, आप यहाँकी अपेक्षा अनन्तगुना अधिक अखण्ड आनन्दमें जा रहे हैं।

७—आपके अखण्ड आनन्दके अनुभवसे हम सभी परम सुखी हो जायेंगे।

८—प्रभुसे प्रणाम जरूर कहियेगा।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥ गीता २।११

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ गीता ५।२६

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥ गीता १२।४

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥ गीता १८।६९

भगवान्‌की लीला नित्य-निरन्तर मंगलमयी ही होती है

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
(गीता १८।६१

प्राणीमात्र के कर्मबीज के अनुसार भगवान् के विधान से उनको अ
प्रतिकूल सुख-दुःख रूप फल प्राप्त होता रहता है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के
मात्र की रत्ती भर भी शक्ति नहीं है कि वह उसे इधर-उधर कर सके। इ
भगवान् के हरेक विधान को मंगलमय महाप्रसाद ही समझकर परम प्रसन्न
चाहिए।

कर्मबीज परमात्मा ही है।
माला पहिना दिया है।
चन्दन लगा दिया है।
प्रणाम कर लिया है।

तुलसीदल भगवान्का चढ़ा हुआ दे दिया है।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
भगवन्नाम सुना दिया है।

इसलिये कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका आपके चरणोंमें अनन्य
बढ़ता ही जावे और कोई हेतु है ही नहीं।

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥
आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

॥ श्रीराम जय राम जय जय राम ।

सन्त वाणी

(पूज्य श्रीरामचन्द्रजी डोंगरे महाराज की वाणी में)

—जो मनुष्य भगवान की लीलाओं का श्रद्धा पूर्वक नित्य श्रवण, कथन एवं मनन करता है, उसके हृदय में भगवान अल्प समय में ही प्रकट हो जाते हैं।

—यज्ञ कराने वाला तो पुण्य का संचय करता ही है, परन्तु इसकी योजना करने वाले, श्रोता तथा सम्बन्धित व्यक्ति भी पुण्य के भागी होते हैं।

—मनुष्य जन्म से बिगड़ा हुआ नहीं रहता बल्कि कुसंग से बिगड़ता है। जन्म से तो बालक शुद्ध और निर्विकार ही होता है।

—जब भगवान जीव पर कृपा करते हैं तो उसे सन्मति देते हैं, सम्पति नहीं।

—जितने पाप आते हैं वे आँख और कान से आते हैं, इसलिये इन दोनों को शुद्ध रखो।

—भगवान मनुष्य को उसकी योग्यता से अधिक ही देते हैं। यदि कम देवें तो यह समझना चाहिए कि मैं अधिक के योग्य नहीं हूँ।

—जिसके घर में कुछ नहीं हो—भगवान हों तो बहुत है। जिसके घर में बहुत है—भगवान नहीं है तो कुछ भी नहीं है।

—सन्त में भी एकाध दोष तो होते ही हैं। निर्दोष एक भगवान हैं।

—भूल बताने वाले को प्रणाम करो, उसका उपकार मानो। मुँह पर प्रशंसा करने वाले ही पीछे से निन्दा करते हैं।

१०—सन्त जब ध्यान में बैठे हुये किसी जीव का स्मरण करते हैं अथवा भावावेश में जिससे मिलते हैं या जिसकी ओर बार-बार देखते हैं तो उसका कल्याण होता है।

११—जिन हाथों से परोपकार नहीं बनता वे हाथ मुर्दे के समान हैं।

१२—जो मन से पाप करते हैं उन्हें कम और जो शरीर से पाप करते है
पूरी सजा मिलती है। किन्तु मन से भी पुण्य करने वाले को अ
पुण्य फल की प्राप्ति होती है।

१३—अन्तःकरण की परीक्षा आँखों से होती है। काली आँखों वाला
पीली आँखों वाला लोभी तथा लाल आँखों वाला क्रोधी होता है।

१४—पेट में जाने के बाद जो मूत्र रूप में परिवर्तित न हो वह चरणामृत अ
मलका रूप न ले उसका नाम प्रसाद है।

१५—सुख में मनुष्य सब कुछ भूल जाता है। अतएव जीवन में एकाध
का होना आवश्यक है क्योंकि दुःख के रहते हुये मनुष्य भगवान को
भूल नहीं सकता।

१६—वन्दन भगवान को बन्धन में डालता है और वन्दन से भगवान
होते हैं।

१७—जिस घर में भजन कीर्तन तथा भगवान की सेवा होती है,
वैकुण्ठ है।

१८—जल के विना नदी की शोभा नहीं है और कुमकुम के विना
(सौभाग्य) की शोभा नहीं है।

१९—जो पाप करता नहीं परन्तु सुनता है, उसे भी दोष लगता है और
मिलती है।

२०—जिस प्रकार मनुष्य दुःख में भोजन नहीं छोड़ सकता है उसी प्रकार
में भजन-पूजन भी नहीं छोड़ना चाहिए।

२१—आँगन में आये हुये भिखारी को यदि कुछ नहीं मिलता है तो वह
पुण्य ले जाता है।

२२—जो भगवान को जिमाता है, वह संसार को जिमाता है।

२३—तीर्थ स्नान से शरीर शुद्ध होता है—मन शुद्ध नही होता।

२४—धर्म की उन्नति होगी तो देश की उन्नति होगी।

२५—गाय बल देती है और ब्राह्मण बुद्धि देता है।

२६—निन्दा सहन करना सहज है, परन्तु प्रशंसा को संभालना कठिन कार्य है। प्रशंसा सुनकर मनुष्य में सूक्ष्म अभिमान आता है।

२७—अधर्म से एकत्रित धन, कमाने वाले को तो सुख देता नहीं, उत्तराधिकारी के रूप में भोगने वाले व्यक्ति को भी दुःख देता है।

२८—साधु ब्राह्मण की अधिक परीक्षा नहीं करनी चाहिए। परीक्षा से लाभ के बजाय हानि ही होती है। मन नहीं माने तो सम्बन्ध नहीं रखें।

२९—यदि दोषी प्राणी को सजा दोगे तो भगवान उसको सजा नहीं देंगे।

३०—पुण्य के प्रकट करने पर पुण्य का नाश होता है। पाप को प्रकट करने पर पाप का नाश होता है।

३१—भगवान की कथा सुनने से पापों का नाश होता है और जीवन सुधरता है।

३२—जिसका वीर्य स्थिर है उसका प्राण स्थिर है। जिसका प्राण स्थिर है उसका मन स्थिर है।

३३—ज्ञानी ललाट में दृष्टि स्थिर करके वहाँ ब्रह्म के दर्शन करते हैं, वैष्णव हृदय में श्रीकृष्ण (इष्ट देव) का दर्शन करते हैं।

३४—एकाध सती स्त्री और सन्त प्रत्येक ग्राम में होते हैं। इसीलिए पाप की वृद्धि होने पर भी पृथ्वी टिकी हुई है।

३५—जो भगवान पर सब कुछ छोड़ देता है, भगवान स्वयं उसकी चिन्ता करते हैं।

३६—सर्प निरपराधी को नहीं डंसता, परन्तु मनुष्य तो निरपराधी को भी नहीं छोड़ता।

३७—मस्तक पर ब्रह्मनिष्ठ का हाथ फिरने से परमात्मा के दर्शन होते हैं।

३८—भविष्य की चिंता न करो। वर्तमान को सुधारोगे तो भविष्य अवश्य सुधरेगा।

३९—पाप के अतिशय बढ़ जाने पर वंश का नाश करने के लिए पाप, पुत्र
में जन्म लेता है।

४०—पुण्य की अत्यन्त वृद्धि होने पर पुण्य भगवान के रूप में अवतरित होता

४१—गम खाने वाला तपस्वी है।

४२—प्रत्येक घर में एक पुण्यात्मा होता है—जिसको लेकर लीला का वि
होता है। उस जीव के जाने पर घर की दशा विगड़ जाती है।

४३—उत्तम भक्ति वही है जब भगवान जीव का स्मरण करने लगें।

४४—जो सिर्फ अपने लिये पकाकर खाता है वह अन्न नहीं खाता, पाप प
खाता है।

४५—सम्पत्ति, सन्तान और लक्ष्मी तो प्रारब्ध प्रमाण से मिलती है। जि
लिखा है उतना तो मिलेगा ही।

४६—एक स्त्री (अथवा एक पुरुष) में ही काम भाव मर्यादित रखने
ब्रह्मचारी है।

४७—जिस स्त्री को पति में परमात्मा के दर्शन नहीं होते उसे मन्दिर की म
भगवान के दर्शन नहीं होते।

४८—मन की अधोगति है, उसे तो मंत्र की सहायता से ही ऊपर उठाय
सकता है।

४९—जिसे परमात्मा का ध्यान करना हो उसे अति उपवास और अति
त्यागना चाहिए।

५०—गर्भवास और नरक वास दोनों समान है। गर्भ में नरक के दुःख
पड़ते हैं।

५१—सत्कर्म करने के बाद मन प्रफुल्लित हो तो समझना चाहिए कि भ
प्रसन्न हो गये। यदि मन चंचल या विकारयुक्त हो तो समझना च
कि प्रसन्न नहीं हुये।

५२—जहाँ प्रेम हो वहाँ आमन्त्रण की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। विना आमन्त्रण जाने से प्रेम बढ़ता है। जहाँ प्रेम नहीं वहाँ आमन्त्रण मिलने पर भी जाना ठीक नहीं है।

५३—जो शरीर का वहुत शृंगार करता है वह किसी भी समय नीति के मार्ग से विचलित हो सकता है।

५४—अनन्य भक्ति का यह अर्थ नहीं कि किसी दूसरे देव या देवी को न मानो। इष्टदेव तो एक रखो और वाकी दूसरे देवों को अंश समझकर वन्दन-पूजन करो।

५५—जिस प्रकार भक्त भगवान के दर्शन के लिए आतुर रहता है, उसी प्रकार भगवान भी भक्त के दर्शन के लिए आतुर रहते हैं।

५६—सिद्धियाँ भगवान के मिलन में वाधा देती हैं। वीच में जंजाल खड़े कर देती है।

५७—विना वैराग्य के जो घर छोड़ते हैं उनका पतन होता है।

५८—जो माया के प्रवाह में वहता रहता है उसे माया दुःख नहीं देती। परन्तु माया के विपरीत जाने से वह त्रास देती है।

५९—मन का विश्वास मत करो उस पर पहरा रखो।

६०—अधिक अनर्थ होने पर माँ पृथ्वी रसातल में चली जाती हैं।

६१—ब्राह्मण जिस देवता के मंत्र वोलते हैं वे देवता आते हैं।

६२—जो पुस्तक की चोरी करता है वह गूंगा होता है। स्वर्ण का चोर अंधा होता है और अन्न का चोर भिखारी होता है।

६३—सच्चे सन्त जिसके यहाँ भोजन करते हैं उसका कल्याण किये विना वहाँ से जाते नहीं।

६४—अति कामी और अति पापी अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

६५—ब्राह्मण के ठीक-ठीक मंत्रोच्चारण करने पर यजमान को फल की प्राप्ति होती है और अशुद्धि रहने पर सजा मिलती है। शुद्ध मंत्र अमृत है और अशुद्ध मन्त्र जहर है।

६६—माता-पिता की सेवा करने वाला पुत्र कभी दुःखी नहीं होता।

६७—अन्तर में आनन्द आवे तो समझो भगवान प्रकट हुये हैं।

६८—भक्ति को गुप्त रखो, प्रकट मत करो। प्रकट होने पर विघ्न खड़े
जाते हैं।

६९—आहार से ही मनुष्य के मन की परीक्षा होती है।

७०—जो मुफ्त का खाता है उसे अपने पुण्य में से कुछ देना पड़ता है।

७१—भगवान रस भोगी हैं, वे रस का पान करते हैं। इसलिए उन्हें समर्पि
किये हुये थाल में से अन्न कम नहीं होता।

७२—धरती में चार दानें डालने से धरती चार हाजार दानें देती है। इसी त
भगवान को जो देते हो भगवान उसे अनन्त गुना करके देते हैं।

७३—यज्ञानुष्ठान में वाधा आवे तो समझो कि मेरे पाप अधिक हैं।

७४—परमात्मा को गुप्त रहना अच्छा लगता है, जीव को प्रसिद्धि अच
लगती है।

७५—जिस घर सायंकाल क्लेश है। वहाँ लक्ष्मीजी नहीं ठहरतीं।

७६—भगवान् पहले जहर देते हैं, परीक्षा लेने के वाद ही अमृत देते हैं।

७७—जिसके चरण धोये जाते हैं, उनके पुण्यो का क्षय होता है। चरण ध
वाले को ये पुण्य मिलते हैं।

७८—दान से धन की शुद्धि, स्नान से तन की शुद्धि तथा ध्यान से मन
शुद्धि होती है।

७९—तन मन-धन भगवान् को अर्पण करने पर जीव और ब्रह्म का मिल
होता है।

८०—मस्तक पर किसी सन्त का हाथ फिरे तो काम का नाश होता है।

८१—कर्कश वाणी सहन करने वाला सुखी होता है। कर्कश वाणी वोलने वा
दुःखी होता है।

८२—शिवजी जो करते हैं वह अनुकरणीय नहीं है, जैसा कहते हैं वैसा करना है

८३—भगवान के मार्ग में आगे बढ़ना है तो बालक बनकर रहो ।

८४—मरने के पहले वैर का विनाश करो । ऐसा करने पर दोष नहीं लगेगा ।

८५—संत की परीक्षा तो आँखों से ही होती है । सुन्दर व्याख्यान देनेवाला तो विद्वान् कहलाता है, सन्त नहीं कहलाता ।

८६—अतिभय अथवा अति दुःख में पड़ने पर भी, जो भगवान् की शरण में नहीं जाता, वह भाग्यहीन होता है ।

८७—जो धर्म के लिये मार खाता है, वह परमात्मा के लिये मार खाता है, उसे रोना नहीं पड़ता ।

८८—जब पापों में कमी आयेगी तो भगवान् के प्रति प्रेम जागेगा ।

८९—जो अकेला खाता है वह बिल्ली बनता है । लुकछिपकर अकेले मत खाओ ।

९०—जिसके घर का खाओ उसकी प्रशंसा करो ।

९१—जहाँ प्रेम होता है वहाँ मनुष्य मांगकर खाता है ।

९२—जो ब्राह्मण बहुत तप करता है, उसके घर का मांगकर भी खाओ । दूसरा कुछ न भी मिले तो मांगकर पानी ही पीवो । पवित्र ब्राह्मण के घर के जल ग्रहण से मन और वाणी सुधरती है ।

९३—भगवान् सृष्टि की रचना संकल्प मात्र से करते हैं ।

९४—घर में कोई वस्तु बिगड़ेगी तो वह वस्तु तुम्हें श्राप देगी । इसलिये बिगड़ने के पहले ही उसे दूसरे को दे दो ।

९५—शरीर में रहने वाली वासनाओं का नाश जप-तप द्वारा होता है, परन्तु बुद्धि में रहने वाली वासना तो भगवत् कृपा होने पर ही जाती ।

९६—पैसा कमाने के लिये यदि पुरुष पाप करता है तो वह पाप पुरुष का है । परन्तु पैसे से कोई पुण्य करता है तो उसमें आधा भाग स्त्री का होता है । जो स्त्री पति में भगवान् का भाव रखकर सेवा करती है उसे ही पुण्य मिलता है ।

९७—जो भगवान् के लिये भी ठीक बातें नहीं करता वह तुम्हारे लिये कैसे करेगा ? अर्थात् नहीं करेगा ।

९८—अपनी कोई निन्दा करे तो उससे अपना ही लाभ है । निन्दा सहन करो । परमात्मा भी निन्दा सहन करते हैं ।

९९—मन को शुद्ध रखना है तो गम खाओ और तन को शुद्ध रखना है तो कम खाओ ।

१००—सत्संग न मिले तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु कुसङ्ग तो मत करो ।

मातृ देवो भव ! पितृ देवो भव !

(माता को देव मानने वाला हो, पिता को देव मानने वाला हो)

तुम भूलना सब कुछ मगर माँ-बाप को मत भूलना ।
माँ-बाप का कर्जा बहुत सिर पर चढ़ा मत भूलना ॥
मुखड़ा तुम्हारा देखने को देवता पूजे बहुत ।
फिर जन्म पर हरखे बहुत इस बात को मत भूलना ॥
ऊँचे स्वरों थाली बजी, औ कुटुम्ब एकत्र किया ।
गुड़ गाँव में घर-घर दिया, इस प्यार को मत भूलना ॥
माँ-बाप के कपड़े सनें दिन-रात औ मल-मूत्र से ।
धो-पोंछकर छाती लगाया, तुम इसे मत भूलना ॥
दूध पीते बीमार हुए, माँ को दवा खानी पड़ी ।
टोने किये, उतारी नजर, उस वक्त को मत भूलना ॥
ठंड के दिन रात को भी, मूतकर कपड़े भिगोए ।
साफ कर सूखे सुलाया, मां को कभी मत भूलना ॥
मल में लिपटे तुम कहीं, माँ ने देखा किसी भी दम ।
लगे हाथों वहीं न्हिलाया, वह भी घड़ी मत भूलना ॥

अपने मुख का ग्रास तुमको गोदी बिठा मुखमें दिया ।
चाहे स्वयं भूखी रही, तुम वह दिवस मत भूलना ॥
तुमने कमाया धन बहुत, मां-बाप तरसे रात दिन ।
ऐसी कमाई धूल है, ये बात तुम मत भूलना ॥
तुम भी अगर सन्तान से, सुख चैन की आशा करो ।
खुश हो सदा माँ-बाप की सेवा करो, मत भूलना ॥
धन से सब कुछ भले-मिले, माँ-बाप मिलते हैं नही ।
उनके चरणों सर नवाना, नित-कर्म ये मत भूलना ॥
माँ-बाप तो बूढ़े हुए, इनकी कहाँ अब जिन्दगी ।
इनकी सही आशीश लो, मां-बाप को मत भूलना ॥
घर में देवी-देवता हैं, भटक कहाँ जाते हो तुम ।
इनकी करो तुम वन्दना माँ-बाप को मत भूलना ॥
तुम कहीं चूके अगर यह, बीत जायेगा समय ।
हाथ मल पछताओगे, मां-बाप को मत भूलना ॥
आंख से आंसू गिरेंगे, औ तड़पते ही रहोगे ।
हालत बिगड़ती जायगी, मां-बाप को मत भूलना ॥
जागो, उठो ! सोओ नहीं, और ना तुम गाफिल रहो ।
आज "राही" कह रहा है, मां-बाप को मत भूलना ॥

कुछ महत्त्वपूर्ण बातें

(पूज्य श्रीदामोदरदासजी डालमियाके सत्सङ्गसे)

१—"सब साक्षात् परमात्मा हैं" इसमें मुझे संशय नहीं है । } यह एक चेतन अनुष्ठान है ।

इस चेतन अनुष्ठानमें चेतन परमाणु ठसाठस भरे हुए हैं । ये

परमाणु किसीके नामसे, किसी भी जगह (चाहे जितनी दूर हो) एवं किसी भी वक्त भेजे जा सकते हैं। इससे चेतन परमाणु उसी क्षण वहाँ पहुँच जाते हैं एवं उसके अन्दर घुस-घुसकर (प्रवेश कर) महान् लाभ देते ही हैं। चेतन परमाणुमें महान्-महान् एवं असीम-असीम शक्ति है।

२—(क जहाँ भी श्रीगीता और रामायणकी चर्चा होती है, वहींपर चेतन परमाणु बिखरने लगते हैं और वहाँ स्थित सभी प्राणियोंके अन्दर प्रवेश कर महान् लाभ देते हैं।

(ख) श्रीगीता और रामायणके समान कोई ग्रन्थ नहीं है।

३—(क) अच्छी नीयत अर्पण-बुद्धि, भगवद् बुद्धि एवं पूर्णताको भगवान्ने आसमानसे भी ऊपर उठाया है इनको खूब आदर दो।

(ख) क्रोध, कामना, चिड़चिड़ापन, जिद्द एवं संशयको भगवान्ने पातालमें गिराया है। इनको छूओ मत।

४—इसमें मुझे संशय नहीं है कि भगवान् श्रीगीता-चर्चा एवं निष्काम-भाव पूर्णतासहित चाहते हैं एवं मिलनेसे बहुत ज्यादा गद्‌गद् होते हैं। वे कहते हैं कि जो श्रीगीता-चर्चा एवं निष्काम-भावको (पूर्णतासहित) आदर देता है वह मेरे हृदयका परम धन है। उसे मैं अपने हृदयमें चिपकाये रखता हूँ, कभी अलग नहीं होने देता।

५—परमात्मा एकरंग एकरस है, ठसाठस भरा हुआ है, पूर्णरूपसे व्याप्त है। उसमें एक सूईकी नोककी छायातक भी रखनेकी जगह नहीं है।

६—निष्काम कर्म+श्रीगीताजीका तत्त्व चेतन पारस है।

७—'श्वास ही परमात्मा हैं', यही भजन है 'इसमें मुझे संशय नहीं हैं' इससे सब श्वास दिव्य हो जाते हैं।

८—अपने चेतनपर ढले रहो एवं अनन्तकोटि ब्रह्माण्डको चेतनपर ढालो। कैसे?

सब साक्षात् परमात्मा है
इसमें मुझे संशय नहीं है। } -चेतन पर ढलना हो गया।

'सब साक्षात् परमात्मा हैं' इसमें मुझे संशय नहीं है—चेतनपर ढालना हो गया।

९—श्रीगीताजीके ४। ३१ से ४। ४२ एवं १८। ५६ से १८। ७८ श्लोकोंका नित्य पाठ करना चाहिये।

नित्य-पठनीय कुछ स्तोत्र

श्रृङ्गार-आरतीके समयकी स्तुति

वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं
कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम्।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं
सन्मानसालि परिपीतपरागपुञ्जम्॥

जो अपने किशोरावस्था के सौरभ से योगियोंके चितोंका अपहरण करता है, त्रितापों—(आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक) का नाश करनेके लिए मुनि श्रेष्ठों द्वारा—नित्यनिरन्तर जो सेवनीय हैं, भक्तोंके मानस-रूप भ्रमरों

द्वारा चारों ओरसे लिपटा हुआ जिसका परागपुञ्ज है, विदेहनन्दिनी श्रीसीताजी के उस पाद-पुण्डरीकको मैं वन्दना करता हूँ।

दूर्वादलद्युतितनुं तरुणाब्जनेत्रं
हेमाम्बरं वरविभूषणभूषिताङ्गम्।
कंदर्पकोटिकमनीयकिशोरमूर्तिम्
पूर्ति मनोरथभवां भज जानकीशम्॥

जिनके शरीरकी श्यामता दुर्वादलके समान है, तथा जिनके नेत्र नवीन खिले हुए कमलोंके सदृश हैं। जिनका श्रीअङ्ग स्वर्णके समान पीताम्बर एवं श्रेष्ठ आभूषणोंसे युक्त है। जो किशोर वय एवं करोड़ों कामदेवकी सुन्दरतासे युक्त हैं। जो भक्तोंके सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं उन श्रीजानकी वल्लभ श्रीरामको भजो।

श्रीजानकीजीकी प्राकट्य आरती

भई प्रकट कुमारी भूमि विदारी, जनहितकारी भयहारी।
अतुलित छवि भारी, मुनिमन हारी, जनक दुलारी सुकुमारी॥
सुन्दर सिंहासन, तेहि पर आसन, कोटि हुतासन द्युति कारी।
शिर छत्र विराजै सखि गण साजै, निज निज काजै कर धारी॥
सुर सिद्ध सुजाना हनै निशाना चढ़े विमाना समुदाई।
बरषहिं बहु फूला मँगल मूला अनुकूला सिय-गुण गाई॥
देखहिं सब ठाढ़े लोचन गाढ़े सुख बाढ़े उर अधिकाई।
अस्तुति मुनि करहीं आनंद भरहीं पायन परहीं हरषाई॥

ऋषि नारद आये नाम सुनाये सुनि सुख पाये नृप ज्ञानी।
सीता अस नामा, पूरन कामा सब सुख धामा गुण खानी॥
सियसन मुनिराई विनय सुनाई समय सुहाई मृदु वाणी।
लालन तन लीजै चरित सो कीजै, यह सुख दीजै नृप-रानी॥
सुनि मुनिवर वानी सिय मुसुकानी लीला ठानी सुखदायी।
सोवत जनु जागीं, रोवन लागीं नृप बड़भागी उर लाई॥
दम्पति अनुरागे प्रेम सुपागे तेहि सुख लागे मन भाई।
अस्तुति सिय केरी प्रेम लयेरी वरनि कुचरी सुखदाई॥

दोहा

निज इच्छा मख भूमि ते, प्रकट भई सिय आय।
चरित किये पावन परम, बरधन मोद निकाय॥

नित्य सायंकाल की स्तुति

[१]

जै श्री जानकि वल्लभ लाल॥
मणि-मन्दिर श्रीकनक महलमें, विपुल रँगोली बाल।
जै श्रीजानकी वल्लभ लाल॥

कोइ गावत कोइ वीण बजावत कोइ मृदंग करताल।
जै श्रीजानकी वल्लभ लाल॥

श्रीयुगलप्रिया रिझवति दोउलालन, छवि लखि भइ सो निहाल।
जै श्रीजानकी वल्लभ लाल॥

(२

रंग भरि जोड़ी सदा चिरजीवो।
सदा बिहारी करो रंग मन्दिर नित्य किशोर किशोरी ॥ सदा० ॥
सदा सुहागिनि की अनुरागिनि, रँगी रहो बड़ भाग बड़ोरी।
आलि भाग बड़ोरी, आलि भाग बड़ोरी, प्यारो भाग बड़ोरी। सदा०।
पियके प्राण बसो सिय सुन्दरि, सिय मन श्याम बसोरी।
पिय की चाह सुचातिकलौं रहि, सियजूकी मया स्वाति बरसोरी। सदा०।
सिय मुख चन्द सुधारस द्रवो नित, पियके नयन चकोरी।
हमरे नयन प्राणके सरवस, अधिक-अधिक रस सुख सरसोरी। सदा० ॥
आलि सुख सरसोरि प्यारी, सुख सरसोरी।
श्रीकृपानिवास उपास महलकी, टहल लगीसो लगोरी ॥ सदा० ॥

(३)

ललि लालनकी जोड़ी मुबारक रहैं।
प्रिया प्रीतम की जोड़ी मुबारक रहैं ॥
श्रीजनक नगरिया विमल बहरिया, ललित लहरिया श्रीसरयू बहैं।
श्रीकनक महलिया रँग भरि अलिया, नित नइ विमल बहारैं लहैं ॥
तकनि झकनि मृदु हँसनि परस्पर-प्रेम सुधा रस धारैं बहैं।
छकैं जो यहि रस फिरि न झँकैं, जग श्रीकान्तिलता जो चहैं सो बहैं ॥

(४)

मैं वारी युगल पर वारी ॥
भूपति जू के श्यामसुन्दर वर, गोरी श्रीजनक-दुलारी ॥ मैं० ॥
नवल निकुँज नवल वनिता प्यारी, चहुँदिशा लसत अति प्यारी ॥ मैं० ॥
गान सरस वीणा मृदंग धुनि, श्रीयुगलप्रिया बलिहारी ॥ मैं०

[५]

जय जनक नन्दिनि जगत बन्दिनि जन अनन्दिनि जानकी।
रघुवीर नयन चकोर चन्दिनि, वल्लभा प्रिय प्रानकी॥
तव कंज पद मकरन्द स्वादित, योगिजन मन अलि किये।
करि पान गनत न आन हिय निर्वान सुख आनंद हिये॥
ब्रह्मादि शिव शनकादि सुरपति, आदि निज मुख भाषहीं।
तव कृपा नयन कटाक्ष चितवनि, दिवस निशि अभिलाषहीं॥
तन पाय तुमहिं विहाय जड़मति, आन मानत देवहीं।
हत भाग्य सुरतरु त्यागि करि, अनुराग रेड़हिं सेवहीं॥
सुख खानि मंगलदानि जन जिय जानि शरण जो जात हैं।
तव नाथ सब सुख साथ करि, तेहि हाथ रिझि बिकात हैं॥
यह आस "रघुवरदास" की, सुखरागि पूरन कीजिये।
निज चरण-कमल सनेह जनक विदेहजा वर दीजिये॥

सुन्दर बदन विलोकिके नयनन फल लीजै।
जानकि वल्लभ लालकी सखि आरति कीजै॥
कुण्डल ललित कपोल पै झुकि अलख विराजै।
कण्ठा कण्ठ सुहावनो गजमुक्ता राजै॥
पाग बनी जरतारकी दुपटा जनतारी।
पटुका है पचरंग को मणि जड़ित किनारी॥
सिय जू के सोहैं लाली चूनरी मणि ज्योति विराजै।
(श्री) "रसिक अली" जू की स्वामिनी अतुलित छबि छाजै॥

विनय-पत्रिकाके कुछ पद

[१]

कबहुँक अब, अवसर पाई।
मोरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाई॥ १॥
दीन, सब अंग हीन, छीन, मलीन, अघी अघाई।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाई॥ २॥
बुझिहैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाई।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाई॥ ३॥
जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाई।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाई॥ ४॥

(२)

मन ! माधवको नेकु निहारहि ।
सुनु सठ, सदा रंकके धन ज्यों, छिन-छिन प्रभुहिं संभारहि ॥ १॥
सोभा-सील-ग्यान-गुन-मंदिर सुंदर परम उदारहि।
रंजन संत, अखिल अघ-गंजन भंजन विषय-बिकारहि॥ २॥
जो बिनु जोग जग्य-व्रत-संजम गयो चहै भवपारहि।
तौ जनि तुलसिदास निसि-वासर हरि-पद कमल बिसारहि॥ ३॥

(३)

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जनके वस, होत सदा यह रीति॥ १॥
जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करमकी डोरी।

सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी ॥ २ ॥
जाकी मायाबस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाय ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो ॥ ३ ॥
विस्वंभर, श्रीपति त्रिभुवनपति, वेद-विदित यह लीख।
बलिसों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगी भीख ॥ ४ ॥
जाको नाम लिये छूटत भव-जनम-मरन दुःख-भार।
अंबरीस-हित लागि कृपानीधि, सोइ जनमे दस बार ॥ ५ ॥
जोग-बिराग, ध्यान-जप-तप करि, जेहि खोजत मुनि ग्यानी।
बानर-भालु चपल पसु पामर, नाथ तहाँ रति मानी ॥ ६ ॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, ससि सब आग्याकारी।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेनके द्वारा बेंत कर धारी ॥ ७ ॥

(४)

यह विनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-विस्वास-भरोसो हरो जीव-जड़ताईं ॥ १ ॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥ २ ॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ-जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ अंडकी नाईं ॥ ३ ॥
या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति-प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥ ४ ॥

(५)

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो॥ १॥
करम उपासन, ग्यान, वेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहि तो 'सावनके अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो॥ २॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस पेखत परुसि धरो॥ ३॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो-नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि-कटक तरो॥ ४॥
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो॥ ५॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम-नामहि ते तुलसिहि समुझि परो॥ ६॥

भगवान् श्रीरामसे प्रार्थना

बारबार मागउँ कर जोरे। मनु परिहरै चरण जनि भोरे॥१॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू।२॥
जोरि पानि वर मागउँ एहू। सियाराम पद सहज सनेहू॥३॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी।४॥
यह वर मागउँ कृपा निकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता॥५॥
सीता राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उँ अनुग्रह तोरे।६॥
को रघुवीर सरिस संसारा। सिलु सनेहु निबाहनिहारा॥७॥

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईस देउ यह हमहीं ॥८॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू ॥९॥
जो कोसल पति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना॥१०॥
जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो वेगि दास मैं तोरा ॥११॥
देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिविध ताप भव दाप नसावनि॥१२॥
अब करुणा कर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु नित छोभ न होई॥१३॥

दोहा

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम ॥१॥
बारबार बर मागउँ, हरषि देहु श्री रंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥२॥
नाथ एक वर माँगउं राम कृपा करि देहु।
जन्मजन्म प्रभु-पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥३॥
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहऊँ निरबान।
जनमजनम रति राम पद यह वरदान न आन ॥४॥
सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु श्याम।
मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम।५॥
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा निहकाम ॥६॥
भगत कलपतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुखधाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥७॥

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥८॥
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु ।
सोइ बिवेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु ॥९॥

स्तुति

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥१॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥२॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥३॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥४॥
देखि दोष कबहूँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥५॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥६॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोच उर अपनें॥७॥
सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई॥८॥
अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखऊँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखऊँ॥९॥
तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥१०॥
सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी। ११।
कोमल चित अति दीन दयाला। कारण बिनु रघुनाथ कृपाला॥१२।
उमा राम सम हित जगमाहीं। गुरु पितु मातु बंधु कोउ नाहीं। १३॥

दोहा

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन ।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥१॥

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान ।२॥

ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहीं जा पर तुम्ह अनुकूल ।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल ।३।

जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि ।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥४॥

कृपा भलाई आपनी नाथ किन्ह भल मोर ।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहुँ ओर ।५॥

अस प्रभु दीन बन्धु हरि कारण रहित दयाल ।
तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल ॥६॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहि जीव ते धन्य ॥७।

आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन ।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन ॥८॥

समुझि मोरि करतूति कुल प्रभु महिमा जिय जोई ।
जो न भजइ रघुबीर पद जग विधि बंचित सोई ॥९॥

—:०:—

भगवान् श्रीरामके कृपा और स्नेहसे भरे हुए अमृतमय वचन

गिधराज के प्रति

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता ॥ १ ॥
जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥ २ ॥
सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खांगें ॥ ३ ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें मति पाई ॥ ४ ॥
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥ ५ ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥ ६ ॥

नारदजी के प्रति

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥ ७ ॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी ॥ ८ ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई ॥ ९ ॥
प्रौढ़ भए तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ॥१०॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी ॥११॥
जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥१२॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥१३॥

हनुमानजीके प्रति

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी ॥१४॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥१५॥

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माहीं ॥१६॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता ॥१७॥

सीताज़ीके प्रति

कह रघुवीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इन्द्रजीता ॥१८॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे ॥१६॥
कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुर मुनि सुखदाई ॥२०॥

सखाओं और गुरुजीके प्रति

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लगहु सकल सिखाए ॥२१॥
गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे ॥२२॥
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे ॥२३॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पियारे ॥२४॥

सखाओंके प्रति

तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई ॥२५॥
तातें मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥२६॥
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही ॥२७॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना ॥२८॥

दोहा

अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम ॥ १ ॥
जेहि विधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु वचन न मृषा हमार ॥ २ ॥

गुनागार संसार दुःख रहित बिगत सन्देह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ ३ ।
बचन कर्म मन मोरि गति भजन करहिं निःकाम ।
तिन्हके हृदय कमल महुँ करउँ सदा विश्राम ॥ ४ ।

श्रीजानकी चालीसा

दोहा :—जय जय जय श्रीजानकी, रसिकन रस दातार ।
कृपा दृष्टि मोहिं हेरिये, दर्शाइय निज प्यार ॥

चौपाई—

जयजय श्रीमिथिलेश किशोरी । जय रघुवर मुख चन्द्र चकोरी ॥
जय जय जनकनन्दिनी सीते । मृदु स्वभाव अति चरित पुनीते ॥
जय जनकजा जनन हितकारी । क्षमा दया समता चित वारी ॥
जयति अवनिजा कृपा स्वरूपा । रस मय पावन चरित अनूपा ॥
जयति मैथिली रूप उजारी । रघुनन्दन की प्राण पियारी ॥
जय रघुवर रस केलि विलासी । अह्लादिनी शक्ति सुख रासी ।
जय जय राम रसिक मनहारी । जनक सुता निज जन हितकारी ॥
जयति अनादिशक्ति अविनासिनि । जय रघुवररसरंग विलासिनि ॥
जय रासेश्वरि जनक दुलारी । पिय मन चित को चोरन हारी ॥
जय मिथिलेश लली सुकुमारी । रघुवर जीवन प्राण अधारी ॥
जय जय राम प्रेम रस दानी । सरल सुशील कृपा गुण खानी ॥
जयति रसिक जन जीवन मूरी । कीजै वेगि आश मम पूरी ॥
मृदु हँसि पिय अंशन भुज दीने । निरखौं तुमहिं प्रेम रस भीने ॥

नख-शिख युगल स्वरूप निहारी। मैं बहुवार जाउँ बलिहारी॥
दलि त्रणराइ लोन उतारौं। आरति करि निज सर्वस वारौं॥
जय जय श्रीलाड़िली किशोरी। पिय रस रंग रँगौं अति भोरी॥
जय मिथिलाधिप राम दुलारी। जीवन प्राण अधार हमारी॥
जय रघुनन्दन प्रिय पटरानी। महिमा असित वेद नहिं जानी॥
उमा रमा आदिक ब्रह्मानी। सबहिं मुदित तव पद रति मानी॥
शचि शारदा आदि सब देवी। करहिं सदा पद पंकज सेवी॥
शरणागत प्राणहुं ते प्यारी। अस उदार दृढ़ ब्रत तुम धारो॥
कर जोरे लखि सकत न काहू। करत प्रणाम हृदय सकुचाहू॥
सोचत काह देउँ मैं याको। निज बनाय राखत ढिग ताको॥
निरखौं निशिदिन बाट तिहारी। वेगि दर्श दीजै सुकुमारी॥
शरण शरण मैं शरण पुकारी। निजकर गहि अब लेहु उबारी॥
जो बिवसहुँ सिय नाम उचारत। तापर रघुवर तन मन वारत॥
होइ अनुकूल जपत सिय नामा। वाके विबश हरत श्रीरामा॥
शम्भु विरंचि विष्णु भगवाना। करत सदा तुम्हरो गुण गाना॥
तव महिमा कोउ पार न पावत। निजनिज मति सब तव यश गावत॥
मातु सुनयनहिं आनन्द दानी। कीन्हें बाल चरित सुख खानी॥
लक्ष्मीनिधि की प्राण अधारी। तव छवि लखि नित रहत सुखारी॥
श्री सिधि. प्राणहुँ ते प्रिय मानै। सदा रूप गुण शील बखानै॥
भूरि भाग्य निमि वंशिन केरी। कीजै मो पर कृपा घनेरी॥
चरण दर्श दें अब अपनाइय। द्रुतमम आशा सुमन खिलाइय॥
मोहिं तव पद तजि और न आशा। काटिय प्रबल मोह की पाशा॥

निज स्वरुप मम हृदय बसाइय। मनके सकल विकार नशाइय ॥
सिय जू जीवन मूरि हमारी। दै दर्शन अब करिय सुखारी ॥
हौं पद कंज गहौं अकुलाई। स्वकर उठाय लेहु उर लाई ॥
मृदु वचनामृत सींचि जुड़ाई। शिर पर कर फेरत हर्षाई ॥
बहु प्रकार निज प्यार दिखाई। दीजै मम दृग सुफल बनाई ॥

दोहा :—उदासीन जग ते सदा, तव चरणन की आस।
'सीताशरण' सदा करिय, हृदय निकुञ्ज निवास ॥ १ ॥
जग व्यवहार भुलाय के, रटौं निरंतर नाम।
हिय निकुंज में युगल-छवि, लखत रहौं निशि याम ॥ २ ॥
युगल चरण में निशि दिवस, वास करै मनमोर।
'सीताशरण' यही विनय, करौं युगल कर जोर ॥ ३ ॥
श्रीसिय चालीसा सतत, पढ़ै जो प्रेम विभोर।
लखै युगल मुख चन्द्र छवि, करि निज नयन चकोर ॥ ४ ॥

प्रार्थना

राजेश्वरी सर्वेश्वरी, जगदीश्वरी जनकात्मजे।
रसिकेश्वरी हृदयेश्वरी, प्राणेश्वरी हे अवनिजे ॥ १ ॥
छवि सागरी नव नागरी, गुण आगरी हे भूमिजे।
मृदु हँसनि बोलनि मिलनि वारी सदा जयति विदेहजे ॥ २ ॥

याचना

हे मम जीवन मूरि कृपामयि राजकिशोरी।
मम हिय करिय निवास, सदा विनवौं कर जोरी ॥ १ ॥

तजि तव चरण सरोज, अनत मन भूलि न जावै।
मधुकर इव रस पगो, सतत पद पंकज ध्यावै।२॥
तव यह युगल स्वरूप, सदा निवसै हिय मेरे।
राखिय अब सर्वदा, मोहिं पद पंकज नेरे॥ ३॥
भूलि कदा जनि होय, हृदय में विषय विकारा।
कीजै ऐसी कृपा, गहौं पद बारहिं बारा॥४॥

श्रीराम चालीसा

दोहा :—जय रघुनन्दन रसिक वर, जीवन प्राण अधार।
कृपा दृष्टि अवलोकिये, रसिया रस दातार॥ १॥

चौपाई

जय रसिकेश रसिक मन हारी। जानकि बल्लभ अवध बिहारी॥ १॥
जय जय जीवन प्राण अधारे। कृपा सनेह सदन सुकुमारे॥ २॥
जय जय राम रसिक नव नागर। जय जानकी रमण रससागर॥ ३॥
जय अवधेश जनेश दुलारे। रूप अनूप जगत उजियारे॥ ४॥
जय सरयू तट कुंज विहारी। कोटि मदन छविपर बलिहारी॥ ५॥
जय जय कोशलेश सुत प्यारे। रसिकन मन चित चोरन हारे॥ ६॥
जय मैथिली दृगन के तारे रस मय पावन चरित तिहारे॥ ७॥
जय रसिकन रस प्रेम प्रदायक। जय रस रूप सकल रस नायक॥ ८॥
जय जय शरणागत भय हारी। श्री प्रमोद बन कुंज बिहारी॥ ९॥
जयति अनादि अशेष कृपाला। जानकि जीवन रूप रसाला॥१०॥

छवि गुन शील रूप सुख सागर। अमित तेज बल बुद्धि उजागर ॥११॥
जयति कृपा करुणा सुख कन्दा। हरण सकल कलिमल भ्रम फन्दा ॥१२॥
जय जय जगत जनक जग कारण। करुणानिधि भूभार उतारण ॥१३॥
शिव विधि विष्णुदेव मुनिनारद। शुक सनकादिक ब्रह्मविशारद ॥१४॥
नाथ चरण सरोज चित धरहीं। हितसों ध्यावत उर सुख भरहीं ॥१५॥
जनमन रुचिको सदा निबाहत। निज ऐश्वर्य स्वरूप भुलावत ॥१६॥
निज भक्तनपर सर्वस वारत। सेवक हित मानव तन धारत ॥१७॥
प्राकृत जन इव करि नरलीला। संतन सुखद मोद रसलीला ॥१८॥
हे सिय रंग रँगे पिय प्यारे। जीवन धन मम दृगन सितारे ॥१९॥
एक बार हँसि हृदय लगाइय। संसय मोह समूल नसाइय ॥२०॥
लेत जो बिबसहुँ नाम तुम्हारा। सोउ बिन श्रम उतरत भवपारा ॥२१॥
प्रेम समेत जपैं मन लाई। तेहिं कर बिनहीं मोल बिकाई ॥२२॥
बाकी योग क्षेम निज हाथा। करत न देर लगावत नाथा ॥२३॥
आत्म समर्पण जो करि देवै। केवल नाथशरण गति लेवै ॥२४॥
निज सर्वस तेहि ऊपर वारी। पीछे चलत धनुष कर धारी ॥२५॥
हौं अधमाधम अति अघरूपा। अधम उधारन रघुकुल भूपा ॥२६॥
डूबि रहेउँ भवसिंधु मझारी। निजकर गहि अब लेहु उबारी ॥२७॥
शरणागत प्राणहुँ ते प्यारो। तव दृढ़ व्रत श्रुति शास्त्र पुकारो ॥२८॥
सुनि अस बिरद शरण तव आयो। बिनु गथ प्रभुके हाथ बिकायो ॥२९॥
अब अपनाइअ निज जन जानी। सुहृद सुशील कृपा गुणखानी ॥३०॥
अति अज्ञान हृदय मम छायो। अहमिति बस निजरूप भुलायो ॥३१॥
जगत अनित्य सत्य सम जानी। रमत सदा यामें सुख मानी ॥३२॥

अति चंचल मन विषयन माहीं। पगो रहत कबहूँ थिर नाहीं ॥३३॥
रागद्वेष ईर्षा कुटिलाई। छल प्रपंच अतिसय दुःखदाई ॥३४॥
बिबिध भाँति नित मोहिं नचावें। नाथ चरण ते दूर बहावें ॥३५॥
जेहि पर तव कर कंजन छाया। डरति सदा तेहि ते जड़माया ॥३६॥
याते पुनि पुनि कहौं निहोरी। अति सभीत मैं दोउ करजोरी ॥३७॥
चरण शरणमें अब रख लीजै। हिय मैं आप बसेरो कीजै ॥३८॥
स्वयं प्रकाश होइ उरमाहीं। मिटै अविद्या संसय नाहीं ॥३९॥
'सीताशरण' नाथ की आशा। सकल जगत से रहो निराशा ॥४०॥

दोहा

युगल चरण पंकजन में, मधुकर इव मन मोर।
सीताशरण बसै सदा, विनय अहै चित चोर ॥१॥

सावधान एकान्त में, मन करि परम सचेत।
पाठ करै अति शुचि हृदय, सादर प्रेम समेत ॥२॥

श्री रघुनन्दन की कृपा, पावे अविचल धाम।
सीताशरण सदा हृदय, विहरैं सीता राम ॥३॥

छ० रो०

जय रसिकेश उदार प्राण जीवन धन प्यारे।
जय छवि निधि सुख-सिन्धु रूप गुनशील उजारे ॥

जय जय करुणा खानि मृदुलचित कृपा अगारा।
निज जन मन अभिराम जयति रघुवंश कुमारा ॥

निर्हेतुकी कृपालु प्रणत जन आनंद कारी ।
भक्त बछल सुखधाम राम श्री अवध बिहारी ॥
निज पद कंज दिखाय हरिय अति बिपति हमारी ।
सीताशरण विलोक चरण होइहौं बलिहारी ॥

श्रीहनुमान चालीसा

दोहा—जय जय जय अंजनि सुवन, भक्तन जीवन प्राण ।
पवन तनय करुणा निधे, रसिया रसिक सुजान ॥

चौपाई

जय जय अंजनि दृगन सितारे । अमित तेज बल बुद्धि उजारे ॥१॥
जय मारुत सुत कृपा निधाना । राम भक्त जन जीवन प्राना ॥२॥
जय सियराम चरण अनुरागी । नहिं जग कोइ तुम सम बड़भागी ॥३॥
जयति दयानिधि श्रीहनुमाना । सिय रघुवर सेवक जगजाना ॥४॥
ऐसी करो चरण सेवकाई । निज वस किये सिया रघुराई ॥५॥
जय सिय रघुवर प्रेम प्रदायक । अति उदार भक्तन सुखदायक ॥६॥
जय सौमित्रि प्राण के दाता । पाहिमाम् आरत जन त्राता ॥७॥
जय सिय रघुवर के प्रिय दासा । रहत सदा पद पंकज पासा ॥८॥
आप कृपा करि हेरत जेही । सद्य होइ सिय राम सनेही ॥९॥
तेहि उर बसत सदा सियरामा । भक्तबछल प्रभु सब सुखधामा ॥१०॥
गुन अवगुन देखत नहिं ताके । निवसत आप हृदय में जाके ॥११॥
प्रभु तेहि प्राणहुँ ते प्रिय जानत । भली-भाँति ताको सनमानत ॥१२॥

निज कर करत सदा रखवारी। जाके ऊपर कृपा तिहारी ॥१३॥
नाथ कृपा अब मोहिंपर करहू। अवगुन मोर न हिय में धरहू ॥१४॥
यद्यपि हौं अति अधम अयानी। तदपि नाथ चरणन रतिमानी ॥१५॥
मोपर कृपा करहु अब स्वामी। अशरण शरण नमामि नमामी ॥१६॥
सौम्य मनोहर रूप सम्हारी। दै दर्शन मोहिं करिअ सुखारी ॥१७॥
देखि न सकत भयावन रूपा। दिखलाइअ निज रूप अनूपा ॥१८॥
ललितवदन अति सौम्य स्वरूपा। हियबिच हुलसत रघुकूल भूपा ॥१९॥
नख-सिख ललित शृंगार सजाये। सीतापति को हृदय बसाये ॥२०॥
यहि विधि दर्शन दीजिअ स्वामी। दीनबन्धु प्रभु अन्तरयामी ॥२१॥
हौं मन मोहन रूप निहारी। लपटि रहौं चरणन शिर धारी ॥२२॥
नाथ स्वकर गहि मोहिं उठाइअ। हिय लगाय दुख दूर बहाइअ ॥२३॥
मृदु कर कंज शीश मम धारी। पूछिय कुशल सप्रेम सुखारी ॥२४॥
मैं बोलौं अति हिय सकुचाई। कुशल नाथ पद दर्शन पाई ॥२५॥
सीताराम मनोहर जोरी। दृग भरि लखौं विनय यह मोरी ॥२६॥
त्रिभुवन सम्पति तृणसम त्यागौं। सिय रघुवीर चरणरति मागौं ॥२७॥
सपनेहुँ होइ न विषय विकारा। करिअ कृपा अस पवनकुमारा ॥२८॥
नित नव सिय रघुवर पद प्रीती। बढ़ै सदा पावौं रस रीती ॥२९॥
नाथ रूप लीला अनुरागी। रहइ सदा मम मति रस पागी ॥३०॥
कीजिअ ऐसी कृपा महाना। हे समर्थ सर्वज्ञ सुजाना ॥३१॥
तव ऐश्वर्य महान अपारा। सुर मुनि कोउ न जानन हारा ॥३२॥
ब्रह्म रुद्र श्रीपति भगवाना। तव प्रभाव त्रय देवन जाना ॥३३॥
जानि सकहिं का मनुज विचारे। विषय विवसनित रहत दुखारे ॥३४॥

हे सिय रघुवर चरण पुजारी। वेगि लीजिये खबरि हमारी ॥३५॥
हौं अबोध जड़मति अज्ञानी। कीजिअ कृपा दास निज जानी ॥३६॥
शिशुपन ते हौं शरण तिहारी। कहौं काहि निज विपति पुकारी ॥३७॥
दृगभरि निरखौं सीता रामहिं। सुषमाशील रूप गुण धामहिं ॥३८॥
हौं पद कंज गहौं अकुलाई। स्वकर उठावहिं सिय रघुराई ॥३९॥
मिलहिं मोहिं आपन जन जानी। बिहँसि कृपा करुना:गुन खानी ॥४०॥

दोहा

वचन सुधा ते सींचि मोहिं, कर सरोज शिर धार।
पुछहिं दोउ हँसि कुशल मम, जीवनधन सरकार ॥१॥
करहिं प्यार बहुभाँति मोहिं, सिय सिय वल्लभ लाल।
दोउ की सुछवि निहारि के, मो मन होइ निहाल ॥२॥
जयति रसिक वर रसिक मणि, रसिकन जीवन प्रान।
रसाचार्य, रसनिधि मगन, रसिकन रतिरस दान ॥३॥

सोरठा

जय जय पवन कुमार, भक्तन जीवन प्राण धन।
चरणन पर बलिहार, सीताशरण सदा रहौं ॥१॥
पढ़हिं जे नित करि नेम चालीसा हनुमान को।
सिय रघुवर पद प्रेम, होइ मिटहिं संकट सकल ॥२॥

श्रीकिशोरी चालीसा

दोहा—हे करुणामयि कृपामयि, क्षमारूप गुनखानि।
कृपाकोर करि हेरिये, सिय जू सुख रसदानि ॥१॥

चौपाई

हे जग जननि जानकी माता। अति उदार आरत जन त्राता ॥१॥
हे करुणामयि राजकिशोरी। कृपामयी मूरति अति भोरी ॥२॥
हे रघुवीर प्रेमरस दानी। प्रेम पगीं सब शुभ गुण खानी ॥३॥
हे जगजीवन जनकदुलारी। क्षमामयी जन हिय सुखकारी ॥४॥
हे माता वह दिन कब अइहैं। हम तुमको दृग भरि लखि पइहैं ॥५॥
हे माँ तव पदकंज निहारी। मैं पइहौं मन मोद अपारी ॥६॥
हे मइया तव पद लपटाई। प्रेम सहित अति हिय अकुलाई ॥७॥
नैन नेहजल तवपद धोई। मैं जावौं सुखसागर सोई ॥८॥
कृपारूप निजकर ममशिर धरि। करिहौं मोहि दुलार प्यार भरि ॥६॥
शिशु अबोध लखि स्वकर उठाई। गोद राखि निज हृदय लगाई ॥१०॥
मैं मइया कहि गर लपटइहौं। मुख निरखत तन सुरति भुलइहौं ॥११॥
माँ ममशिर कर फेरि सिहाई। पुनि-पुनि मुख चूमत हर्षाई ॥१२॥
कुशल पूँछि शिर सूँघि सुखारी। ममसुख लखि लइहौं बलिहारी ॥१३॥
मइया कब यहि भाँति दुलारी। निज शिशु लखि करि दिहो सुखारी ॥१४॥
अंचल सों दृगपोंछि हमारे। जिमि जननी अपने सुत वारे ॥१५॥
मैं जननी चरणन शिरधारी। दृगलगाय पदकंज सुखारी ॥१६॥
हाथ जोरि बहुविनय सुनाई। माँ की गोद रहौं लपटाई ॥१७॥
बहु विधि माँ को पाय दुलारा। चरणवन्दि हिय भरि उद्गारा ॥१८॥
कहौं कृपामयि हे महतारी। माँ बिन को सुत करै सम्हारी ॥१६॥
मइया तुम सम कृपानिधाना। बिना हेतु कोऊ न दिखाना ॥२०॥
यद्यपि बहु भगवान कहावत। पर माँ तव समता नहिं पावत ॥२१॥

भजन भावना जपतप देखी। रीझत निर्मल जन मन पेखी ॥२२॥
साधनरहित पापरत जानी। मातु दुलारत निजसुत मानी ॥२३॥
कोटिन उमा रमा ब्रह्मानी। मइयापद पूजत हर्षानी ॥२४॥
अगणित शिव विधि विष्णु सिहाई। जननीपद ध्यावत सुखपाई ॥२५॥
जापर कृपा मातु की होई। ताहि दुलार करत सब कोई ॥२६॥
पापी प्रबल कुटिल खल जानी। कोउ न सम्हारत आपन मानी ॥२७॥
शरण जाय विनवत करजोरी। रक्षाहित अतिप्रेम किशोरी ॥२८॥
तब जेते भगवान कहावत। रक्षाकरि निजसुयश बढ़ावत ॥२९॥
पापी पतित अधम जनदेखी। मौंहिय प्रगटत कृपा विशेषी ॥३०॥
पाँवर अतिखल अत्याचारी। विषयाशक्त महा व्यभिचारी ॥३१॥
ऐसेउ जिव को दुखी निहारी। बिना विनय कीन्हें महतारी ॥३२॥
अपनी दिशि लखि उनहिं सम्हारत। तब भगवान दुलार जनावत ॥३३॥
मइया जेहि जिव को न सम्हारें। प्रभु तेहि दिशि कबहूँ न निहारें ॥३४॥
मातु कृपा आश्रित जन जानी। रामहुँ कृपा करत निजमानी ॥३५॥
याते पुनि-पुनि विनय सुनावौं। बार-बार परि चरण मनावौं ॥३६॥
यद्यपि सबविधि साधन हीना। पापनिरत हिय परम मलीना ॥३७॥
तदपि मातु हौं लघुसुत तेरो। कृपाकोर करि ममदिशि हेरो ॥३८॥
युगलरूप मम हृदय वसाई। दीजै सकल विकार नशाई ॥३९॥
हे "गुणशील" मयी महतारी। निज सुत लखि करि देहु सुखारी ॥४०॥

दोहा—हे जगजननी जानकी, सब जग सिरजनहार।
करुणापरिपूरित हृदय, रसनिधि परम उदार ॥ १ ॥

प्रीति प्रतीति प्रदायिनी, भक्ति मुक्ति दातार।
अति आरति चरणन परेउ, करगहि लेहु सम्हार ॥ २ ॥
यह चालीसा नित्य प्रति, पाठ करैं चितलाय।
सीय कृपा को पावहीं विपुल विकार नशाय ॥ ३ ॥

भजन

सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिये।
जाही विधि राखैं राम, ताही विधि रहिये ॥
मुख में हो राम नाम, राम सेवा हाथ में।
तू अकेला नाहीं प्यारे, राम तेरे साथ में ॥
विधि का विधान जान, हानि, लाभ सहिये। जाही विधि० ॥
सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिये ॥

किया अभिमान तो फिर मान नहीं पायेगा।
होगा प्यारे वही जो श्रीरामजी को भायेगा ॥
फल आशा त्याग, शुभ काम करते रहिये। जाही विधि० ॥
सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिये ॥

जिन्दगी की डोर सौंप, हाथ दीनानाथ के।
महलों में राखे, चाहे झोपड़ी में बास दे ॥
धन्यवाद निर्विवाद राम, राम, कहिये। जाही विधि० ॥
सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिये ॥

आशा एक राम जी से, दूजी आशा छोड़ दे।
नाता एक राम जी से, दूजा नाता तोड़ दे ॥

साधू संग, राम रंग, अंग अंग रँगिये।
काम रस त्याग प्यारे, राम रस पगिये॥ जाही विधि०॥
सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिये।
जाही विधि राखै राम, ताही विधि रहिये॥
"लाल भैया, श्यामा सदन, रामघाट श्रीअयोध्याजी"

मधुराष्टकम्

(श्री वल्लभाचार्य कृत)

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ १॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ २॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरः मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ३॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ४॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं स्मरणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ५॥
गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ६॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्।
हृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ७॥
गोपी मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ८॥

श्री रामचन्द्र स्तुति

(अत्रि ऋषि कृत)

नमामि भक्त वत्सलं कृपालु शील कोमलं।
भजामि ते पदांबुजं अकामिनां स्वधामदं॥ १॥
निकाम श्याम सुन्दरं भवाम्बुनाथ मन्दरं।
प्रफुल्लकंज लोचनं भवादि दोष मोचनं॥ २॥
प्रलम्ब बाहु विक्रमं प्रभोऽप्रमेय वैभवं।
निषंग चाप सायकं धरं त्रिलोक नायकं॥ ३॥
दिनेश वंश मण्डनं महेश चाप खण्डनं।
मुनीन्द्र संत रंजनं सुरारि वृन्द भंजनं॥ ४॥
मनोज वैरि वन्दितं अजादि देव सेवितं।
बिशुद्ध बोध विग्रहं समस्त दूषणापहं॥ ५॥
नमामि इन्दिरा पतिं सुखाकरं सतां गतिं।
भजे सशक्ति सानुजं शचीपति प्रियानुजं॥ ६॥
त्वदंघ्रि मूल ये नराः भजन्ति हीन मत्सराः।
पतन्ति नो भवार्णवे वितर्क वीचि संकुले॥ ७॥
विविक्त वासिनः सदा भजन्ति मुक्तये मुदा।
निरस्य इन्द्रियादिकं प्रयांति ते गतिं स्वकं॥ ८॥
तमेकमद्भुतं प्रभुं निरीहमीश्वरं विभुं।
जगद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलं। ९॥
भजामि भाव वल्लभं कुयोगिनां सुदुर्लभं।
स्वभक्त कल्प पादप समं सुसेव्य मन्वहं॥१०॥

अनूप रूप भूपतिं नतोऽहमुर्विजा पतिं।
प्रसीद मे नमामि ते पदाब्जभक्ति देहि मे ॥११॥
पठन्ति ये स्तवं इदं नरादरेण ते पदं।
व्रजन्ति नाम संशयं त्वदीय भक्ति संयुताः ॥१२॥

करने योग्य कार्य

मैं हूँ श्रीभगवानका, मेरे श्रीभगवान।
अनुभव यह करते रहो, तज ममता अभिमान॥ १ ॥
प्रभुके चरणनमें सदा, पुनि-पुनि करो प्रणाम।
कहो "तुम्हें भूलूँ नहीं", मेरे प्रियतम श्याम॥ २ ॥
नाम "राम" को प्रथम लो, पीछे लो मुँह ग्रास।
ग्रास-ग्रासमें 'राम' कहि, देखो प्रभुको पास॥ ३ ॥
दो माला जपना सदा, षोडश मन्त्र महान।
सब सन्तोंका मत यही, करो प्रेम रस पान॥ ४ ॥

सबके सुहृद् बनिये

जहाँ घृणा-सन्देश भरे हों, वहाँ प्रेम दो, दो विश्वास।
जहाँ दोष हो, क्षमा दान दो, अन्धकार में भरो प्रकाश॥ १ ॥
दो निराश को आशा निश्चित, भय-पीड़ितको अभय-प्रदान।
करो विषादपूर्ण मानवको घनानन्दका निर्मल दान॥ २ ॥
दो मुर्झाये मतवालेको अति उल्लासजनक उत्साह।
जाग्रत करो हृदयमें जन-जनके प्रिय प्रभु-रतिकी शुचि चाह॥ ३ ॥
सबमें हरि हैं, सब हरिमें हैं, सब हरिकी लीलाके रूप।
बनो सभीके सेवक, सबके सुखद, हितैषी, सुहृद अनूप॥ ४ ॥

भजन

तेरे पूजन को भगवान बना मन मन्दिर आलीशान ॥ टेर ॥
किसने जानी तेरी माया किसने भेद तुम्हारा पाया।
हारे ऋषि मुनि कर ध्यान बना मन मन्दिर आलीशान ॥ तेरे० ॥
तू ही जल में तू ही थल में तू ही मन में तू ही बन में।
तेरा रूप अनूप जहांन बना मन मन्दिर आलीशान ॥ तेरे० ॥
तू हर गुल में तू बुलबुल में तू हर डाल के हर पातन में।
तू हर दिल में मूरतिमान बना मन मन्दिर आलीशान ॥ तेरे० ॥
तू ने राजा रङ्क बनाये तू ने भिक्षुक राज बैठाये।
तेरी लीला ऐसी महान बना मन मन्दिर आलीशान ॥ तेरे० ॥
झूठे जग की झूठी माया मूरख इसमें क्यूँ भरमाया।
कर कुछ जीवन का कल्याण बना मन मन्दिर आलीशान ॥तेरे०॥

भजन

भगवान तुम्हारे मन्दिर में, मैं तुम्हें रिझाने आया हूँ।
वाणी में तनिक मिठास नहीं, पर विनय सुनाने आया हूँ॥
प्रभु चरणामृत लेने को, है पास मेरे कोई पात्र नहीं।
आँखों के दोनों प्याले में, कुछ भीख माँगने आया हूँ॥
तुमसे लेकर क्या भेंट धरूँ, भगवान तुम्हारे चरणों में।
मैं भिक्षुक हूँ तुम दाता हो, सम्बन्ध बताने आया हूँ॥
पूजा की वस्तु नहीं कोई, फिर मेरा हृदय देख लेना।
हाँ रोकर आज आंसुओं का, मैं हार चढ़ाने आया हूँ॥

भजन

तू ने हीरो खो जनम गंवायो, भजन बिन बावरे।
कदे न बैठो सत्संगत में, कदे न हरिगुण गायो ॥
खटि-खटि मर्यो बैल की नाईं, सोय रह्यो उठि खायो ॥ टेक
ये संसार हाट बनिए की, सब जग सौदे आयो।
चातुर माल चौगुणों कीनों मूरख मूल गंवायो ॥ टेक
यो संसार फूल सेमर की, सेवा देख लुभायो।
मारी चोंच निकल गई रूई, सिर धुनि-धुनि पछितायो ॥ टेक
यो संसार माया को लोभी, ममता महल चिणायो।
कहत कबीर सुनो भई साधो, हाथ कछु नहिं आयो ॥ टेक

भजन

मेरी नाव चली बजरङ्ग बली, जरा वल्ली कृपा की लगा देना।
मुझे रोग ने शोक ने घेर लिया, मेरे पाप को नाथ मिटा देना ॥
मैं दास तो आपका जन्म से हूँ, बालक और शिष्य भी धर्म से हूँ।
बेशर्म विमुख निज कर्म से हूँ, चित से मेरा दोष भुला देना ॥
दुर्बल हूँ दुःखी हूँ दीन हूँ, मैं निज कर्म-क्रिया-गति-क्षीण हूँ मैं।
बलबीर तेरे आधीन हूँ मैं, मेरी बिगड़ी हुई को बना देना ॥
बल देके मुझे निर्भय कर दो, यश शक्ति मेरी अक्षय कर दो।
मेरे जीवन को सुखमय कर दो, संजीवन लाके पिला देना ॥
करुणानिधि आपका नाम भी है, शरणागत राधेश्याम भी है।
इसके अतिरिक्त यह काम भी है, श्रीराम से मुझको मिला देना ॥

भजन

चेत कर नर चेत कर, गफलत में सोना छोड़ दे।
जाग उठ तत्काल, हरि·चरणों में चित को जोड़ दे॥
मनुज तन संसार में मिलता नहीं है बार-बार।
हो सजग ले लाभ इसका, नाम प्रभु का मत बिसार॥
विषय मद में चूर होकर क्यों दिवाना हो रहा।
श्वास ये अनमोल तेरे, क्यों वृथा तूँ खो रहा॥
त्याग दे आशा विषय की, काट ममता-पास को।
ध्यान कर हरि का सदा, कर सफल हर श्वास को॥
विषय मद को छोड़ हरि-पद प्रेम मद तूँ पान कर।
हो दिवाना प्रेम में श्रीराम का गुणगान कर॥
परम प्रियतम हृदय·धन के प्रेम-मद में चूर हो।
छका रह दिन रात तूँ आनन्द में भरपूर हो॥

भजन

सत्ता तुम्हारी भगवन जग में समा रही है।
तेरी दया सुगन्धी हर गुल में आ रही है॥
रवि चन्द्र और तारे तूँने बनाये सारे।
इन सब में ज्योति तेरी इक जगमगा रही है॥
विस्तृत वसुन्धरा पर सागर बहाए तूँने।
तह जिनकी मोतियों से अब चमचमा रही है॥
दिन रात प्रातः सन्ध्या मध्यान्ह भी बनाया।
हर ऋतु पलट-पलटकर करतब दिखा रही है॥

सुन्दर सुगन्धि वाले पुष्पो में रंग है तेरा।
यह ध्यान फूल पत्ती तेरा दिला रही है॥
हे ब्रह्म विश्व कर्त्ता वर्णन हो तेरा कैसे।
जल थल में तेरी महिमा हे ईश छा रही है॥
भक्ति तुम्हारी भगवन क्यों कर हमें मिलेगी।
माया तुम्हारी स्वामी हमको भुला रही है॥
'देवी चरण' शरण है तुमसे यही विनय है।
हो दूर यह अविद्या हमको भुला रही है॥

भजन

भगवन मेरा सहारा तेरे सिवा नहीं है।
आधार एक तूँ है और दूसरा नहीं है॥
तूँ बन्धु, तूँ सखा है, बाप तूँ ही माँ है।
तेरे सिवाय कोई माता पिता नहीं है॥
वह कौन वस्तु लाऊँ जिसको तुझे चढ़ाऊँ।
जो कुछ है सब है तेरा कुछ भी मेरा नहीं है॥
मैं भी तो मैं नहीं हूँ, मेरा कहाँ ठिकाना।
सर्वस्व तूँ है भगवन, तूँ क्या है क्या नहीं है।
धीमी सुलग रही है, कर तेज आग अपनी।
मेरे ममत्व का गम सारा जला नहीं है॥
दीपक में ज्यूँ पतङ्गा जब तक कि 'वीर' कोई।
तुझ में जला नहीं है, तुझसे मिला नहीं है॥

भजन

मगन ईश्वर की भक्ति में अरे मन क्यों नहीं होता।
पड़ा आलस्य में मूरख रहेगा कब तलक सोता॥
जो इच्छा है तेरे कट जायें सारे मैल पापों के।
प्रभो के प्रेम जल में क्यों नहीं अपने को तूँ पोता॥
विषय और भोग में फँस कर न कर बर्बाद जीवन को।
दमन कर चित्त की वृत्ति लगा के योग में गोता॥
नहीं संसार की वस्तु कोई भी सुख की हेतु है।
वृथा इनके लिये फिर क्यों समय अनमोल तूँ खोता॥
धर्म ही एक ऐसा है जो होगा अन्त को साथी।
न पत्नी काम आयेगी न बेटा और कोई पोता॥
भटकता जा बजा नाहक तूँ क्यों सुख के लिये "सालिक"।
तेरे हृदय के भीतर ही वह आनन्द का सोता॥

भजन

प्रभु का नाम ले बन्दे वही सबका सहारा है।
वही माता पिता सबका वही बन्धु हमारा है॥
तुझे प्यारे हैं धन दौलत, माता पिता बहन भाई।
प्रभु से प्यार कर प्राणी वह प्राणों से भी प्यारा है॥
तुझे उसने बनाया तूँ भी उसका बनके रह जग में।
हमें बनना है उसका वह तो पहले ही हमारा है॥
यह पृथ्वी और यह आकाश सागर पर्वतों जंगल।
ये सूरज भी उसी का है उसी का चांद तारा है॥

ये क्यों रचना रची जगदीश ने बलिहारी जाऊँ मैं।
रमा है सारे जग में फिर भी वह इस जग से न्यारा है॥
थके योगी मुनी सारे तपस्वी ध्यान धर धर के।
न महिमा उसकी का पाया किसी ने पारवारा है॥
पड़ी मझधार में नइया लगे हरिनाम का चप्पू।
मेरी जीवन की नौका का वही अन्तिम सहारा है॥

भजन

प्रभु का भजन कर प्यारे बुराई छूट जायेगी।
हृदय में साधना को साध ज्योति जाग जायेगी॥
न पूँजी पुण्य कर्मों की स्व जीवन में इकट्ठी की।
तो अन्तिम काल पश्चाताप की ज्वाला जलायेगी॥
मिलेगा मार्ग मुक्ति का मिटेगा मोह भक्ति का।
अगर मुक्ति भरी वाणी प्रभु का गीत गायेगी॥
कुचिन्तन से हटा मन को सुचिन्तन में लगा मन को।
विचारों की सुपावनता तुझे ऊँचा उठायेगी॥
अगर एकाग्र मन अभ्यास का अभ्यस्त बन जाये।
तो अन्तःकरण की गंगा विजय धारा बहायेगी॥
अगर पतवार श्रद्धा का सहारा छोड़ बैठोगे।
तो भव सागर में पगले 'पाल' नइया डूब जायेगी॥

भजन

भजन भगवान का करले दयामय पतित पावन का।
यही है तथ्य जीवन का, यही है लक्ष्य नर तन का॥

हृदय ही शुद्ध तो होगी उदय अनुभूति ईश्वर की ।
प्रभु का प्यार पाना तो मिटा दो मैल सब मन का ॥
बुरे के संग से आती, बुराई मूल पापों की ।
अगर अपना भला चाहो करो सत्संग सज्जन का ॥
क्षणिक सौन्दर्य है संसार का क्यों मान करता है ।
उतर जायेगा दो दिन में नशा यह रूप यौवन का ॥
प्रभु भक्ति परम शक्ति यही है सच्ची सम्पत्ति ।
विपत्ति में फंसोगे जो करोगे लोभ तुम धन का ॥
जहां भगवद्भजन होता वहीं सब तीर्थ बन जाते ।
बनाओ घर में ही वातावरण प्यारे तपोवन का ॥
समाधी योग की सिद्धि यही है इष्ट तो प्यारों ।
प्रथम यम नियम को पालो करो अभ्यास आसन का ॥
बचा थोड़ा है जीवन अब भजन भगवान का कर लो ।
भरोसा लाल अब कुछ भी नहीं है एक भी क्षण का ॥

भजन,

जिस नर में आत्म शक्ति है वह शीश झुकाना क्या जाने ।
जिस दिल में ईश्वर भक्ति है वह पाप कमाना क्या जाने ॥
मन मन्दिर में भगवान बसा जो उसकी पूजा करता है ।
मन्दिर के देवताओं पर वह फूल चढ़ाना क्या जाने ॥
पितु मात की सेवा करता जो और दुःखों को भी हरता जो ।
वह मथुरा, काशी, हरिद्वार, वृन्दावन जाना क्या जाने ॥

दो काल प्रेम से जो प्राणी ईश्वर का चिन्तन करता है।
भगवान का है विश्वास जिसे, दुःख में घबराना क्या जाने॥
जो खेला है तलवारों से और अग्नि के अंगारों से।
रणभूमि में आकर पीछे फिर वह पांव हटाना क्या जाने॥
जो धर्मवीर और कर्मवीर वेदों का पढ़ने वाला है।
वह दुखिया निर्बल बच्चों को दुःख दे के सताना क्या जाने॥
जिसका ऊँचा आचार नहीं और धर्म से जिसको प्यार नहीं।
जिसका सच्चा व्यवहार नहीं 'नन्दलाल' का गाना क्या जाने॥

भजन

ओ मेरे परदेशी पन्छी जिस दिन तूँ उड़ जायेगा।
तेरा प्यारा पिंजरा पीछे यहीं जलाया जायेगा॥
जिस पिंजरे को सदा सभी ने पाला पोसा प्यार से।
खूब खिलाया खूब पियाला हर दम रखा सम्भाल के॥
दमके रहते रहते नीचे उसे सुलाया जायेगा॥ ओ०
देखे बिना तरसती आँखें, रहना चाहती साथ में।
तेरे बिना न खाते खाना तू ही था हर बात में॥
तेरे पूछे बिना ही सारा काम चलाया जायेगा॥ ओ०
रोयेंगे थोड़े दिन तक ये, भूलेंगे फिर बाद में।
ज्यादा से ज्यादा कुछ इतना कर देंगे तेरी याद में॥
हलुआ पूरी खाकर तेरा श्राद्ध मनाया जायेगा॥ ओ०
इस दुनियाँ में क्या कुछ करना, कभी नहीं तूँ सोचता।
मूरख वे दिन भी आयेंगे पड़ा रहेगा सोचता॥
जन्म अमोलक है यह हीरा माटी में मिल जायेगा॥ ओ०

भगवान् श्रीराम से क्षमा याचना

दोहा

हे सियवर सुख सदन प्रभु, हरन सकल भव भीर।
पाहि-पाहि करुणानिधे, कृपा सिन्धु रघुवीर ॥१॥
हे सिय वल्लभ प्रणत हित, दीनानाथ दयाल।
पाहि-पाहि हृदयेश मम, सरल सुशील कृपाल ॥२॥
हे जानकी जीवन प्रभो, दीन बन्धु सुख मूल।
त्राहि-त्राहि आरति हरन, समन सकल भव सूल ॥३॥
अज अनवद्य अनन्त जो, गुणातीत गुण गेह।
पाहि-पाहि रघुरवीर अब, दीजिए निज पद नेह ॥४॥
पामर पतित मलीन हौं, पाखण्डी अघरूप।
पाहि-पाहि प्रणतार्ति हर, अमल अनूप सरूप ॥५॥
हौं मतिमन्द दयानिधे, प्रभु गुण गण आगार।
पाहि-पाहि प्रति पालिए, हे रघुवीर उदार ॥६॥
हे रघुनन्दन सिय रमन, जगताधार परेश।
पाहि-पाहि जगदीश जग, कारण अमल अशेष ॥७॥
हे सिय-जीवन-धन प्रभो, जगत जनक जग ईश।
पाहि-पाहि जेहि निशि दिवस, जपत मुनीश अहीश ॥८॥
हे सर्वज्ञ उदार प्रभु, सर्वेश्वर सुख रूप।
पाहि-पाहि अब पाहि हे, रघुवर रघुकुल भूप ॥९॥
हे अखिलेश्वर सर्व गत, व्यापक व्याप्य अनन्त।
हौं शरणागत हे प्रभु—पाहि पाहि भगवन्त ॥ १० ॥

प्रभु पद कंज विहाय नित, रहेउ विषय अरुझाय।
पाहि-पाहि हे कृपानिधि, दीजिय प्रभु सुरझाय॥ ११॥
विषय वारि में मीन इव, मन विहरत सुखमानि।
पाहि-पाहि हे दयामय, चरण शरण मोहि जानि॥ १२॥
पद अंकुश दिखलाय के, मन की सकल कुचाल।
दूर कीजिए हे प्रभु, पाहि पाहि रघुलाल॥ १३॥
हौं अवलम्ब विहीन अब, सब दिशि ते हे नाथ।
पाहि-पाहि हृदयेश मम, रघुनन्दन रघुनाथ॥ १४॥
हे अन्तरयामी प्रभो, अशरण शरण दयाल।
पाहि-पाहि रसिकेश्वर, करुणा सिन्धु कृपाल॥ १५॥
विवसहु तारक नाम जपि, जन पावत भव पार।
पाहिमाम् आनन्द घन, चिद् विलाश सुखसार॥ १६॥
हौं अगाध अपराध निधि, करौं न हृदय लजाउँ।
पाहिमाम् भव भय हरण क्षमा करन तब नाउँ॥ १७॥
क्षमा करिय अपराध सब हे प्रभु करुणा ऐन।
पाहिमाम् संशय समन, निज जन आनन्द दैन॥ १८॥
प्रभु दयालु हौं दीन अति, हौं भिक्षुक प्रभु दानि।
पाहिमाम् अशरण शरण, मोहि पाप रत जानि॥ १९॥
सुर नर मुनि कोउ अस नहीं, जो मेटै मम त्रास।
पाहिमाम् आरति हरन, हरहु महा भव पास॥ २०॥
सकृत बार कर जोर जो, कहै शरण हौं राम।
अपनावत निज जानि तेहि, अस उदार तब राम॥ २१॥

यह स्वभाव मोहि दीन लखि, क्या प्रभु गये भुलाय।
पाहि-पाहि अति शीघ्र अब, लीजिए मोहि अपनाय ॥ २२ ॥

अब न देर कीजिए प्रभो, हे जीवन धन प्राण।
अपनाइये अति शीघ्रतर, हे सर्वज्ञ सुजान ॥ २३ ॥

कहिए आपहि जाऊँ कहँ, प्रभु पद पद्म विहाय।
और ठौर नहीं दीन को, लीजिए अब अपनाय ॥ २४ ॥

जग जीवन जगनाथ हो, जग कारण जग ईश।
पाहिमाम् अखिलेश प्रभु, हे समर्थ जगदीश ॥ २५ ॥

इन्द्रियन वश हो भ्रमत हौं, बहु दिन ते जग माहिं।
दौरि थकेउ अब पाहि प्रभु, और ठौर कहुँ नाहिं ॥ २६ ॥

जग में प्रभु अवतार बहु, देवी देव अनेक।
तिनसों मोहि नहिं काज कछु, रामनाम रट एक ॥ २७ ॥

सुरति चहौ रघुवर चरण वास राम के धाम।
रूप सियावर को सदा, निरखौं मन अभिराम ॥ २८ ॥

हे सिय कृपा स्वरूपिणी, क्षमा दया सुख धाम।
पाहिमाम् हे अवनिजे, सब विधि पूरण काम ॥ २९ ॥

चाहौं नहिं ऐश्वर्य कछु, जगत बड़ाई मान।
चरण शरण में राखिय, मोहि अति आरति जान ॥ ३० ॥

है तव मृदुल स्वभाव अति, विनय करत सकुचाउँ।
दीन दुखी नहिं लखि सकहुँ, याते हृदय लजाउँ ॥ ३१ ॥

केवल यह संकेत है, कबहूँ अवसर पाय।
दीनबन्धु को दीन की, दीजिए सुरति कराय ॥ ३२ ॥

सुनते ही रघुवीर के, मम बिगरी बनि जाय।
नतरु कोटि-शत कल्प तक, मैं नहिं सकउ बनाय ॥ ३३ ॥

मन की परम कुचालि से, मैं अति भयउ अधीर।
पाहिमाम् हे कृपामयी, जर जर भयो शरीर। ३४॥
काम क्रोध लोभादि मद, ईर्ष्या द्वेष अपार।
मोहि नचावत दिवस निशि, पाहिमाम् कुरु पार॥ ३५॥
युगल चरण बिसराय नित, विषयन में मन जाय।
पाहिमाम् करके कृपा, अब लीजिए अपनाय॥ ३६॥
है तव विरद उदार अति, को जग जानत नाहिं।
गति जयन्त की सुरति करि मोहि भरोस मन माहिं॥ ३७॥
करती करि आई सदा, करि हौं जन पर प्यार।
मोहि तव चरण सरोज । , नाहिन आन आधार। ३८॥
शरण शरण मैं शरण हूँ, हे मम जीवन मूरि। -
पाहि-पाहि अब पाहि मोहि, दीजिए पग की धूरि॥ ३९॥
हे प्रीतम प्यारी महा, क्षमा दया की खानि।
'सीताशरण' शरण परेऊ, अपनाइय निज जानि॥ ४०॥
सोरठा—पढ़ै जे नित करि नेम,
क्षमा याचना शुचि हृदय।
पावहि सिय पिय प्रेम,
अवसि विरति भव से लहै॥ १॥
विषयन ते वैराग,
होइ कृपा सिय पिय करहि।
युगल चरण अनुराग,
जगै मिटै संशय सकल॥ २॥

भजन

सदा अपनी रसना को रसमय बनाकर।
श्रीराम जयराम जयराम जपाकर॥
इसी जप से कष्टों का कम भार होगा।
इसी जप से पापों का प्रतिकार होगा॥
इसी जप से नर-तन का शृंगार होगा।
इसी जप से तू प्रभु को स्वीकार होगा॥
ये श्वासों की दिन-रात माला बनाकर।
श्रीराम जयराग जयराम जपाकर॥
इसी जप से तू आत्म बलवान होगा।
इसी जप से कर्त्तव्य का ध्यान होगा॥
इसी जप से सन्तों में सम्मान होगा।
इसी जप से सन्तुष्ट भगवान होगा॥
अकेले हो या साथ सबको मिलाकर।
श्रीराम जयराम जयराम जपाकर॥
जो श्रद्धा से इस जप को है नित्य करता।
यही जप है इस जग में कल्याण दाता।
और उसका यही जप है जीवन-विधाता।
यही जप पिता है यही जप है माता।
हरि का कोई रूप मन में बिठाकर।
श्रीराम जयराम जयराम जपाकर॥
ये जप जब तेरे मन को ललचा रहा हो।
या रसिकों के इस पन्थ पर जा रहा हो॥
श्रीराम नाम का भी मजा आ रहा हो।
ध्यान उनके चरणों में प्रबल हो रहा हो॥
तो कुछ प्रेम के 'बिन्दु' दृग से बहाकर।
श्रीराम जयराम जयराम जपाकर॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

आनन्द सागर का अनुभव

मनको परमात्मा के स्वरूप में निश्चल स्थित करने के लिये उनके आनन्दमय स्वरूप का चिन्तन एवं मनन करें। बार-बार आनन्द की आवृत्ति करता हुआ साधक ऐसी धारणा करे कि वे (भगवान्) पूर्ण आनन्द, अपार-आनन्द, असीम-आनन्द, शान्त-आनन्द, कूटस्थ-आनन्द, घन-आनन्द, अचल-आनन्द, ध्रुव आनन्द, नित्य आनन्द, बोध स्वरूप-आनन्द, ज्ञान स्वरूप आनन्द, परम-आनन्द, महान्-आनन्द, अनन्त-आनन्द, अव्यय आनन्द, अनामय-आनन्द, अकल आनन्द, अमल-आनन्द, अज आनन्द, केवल-आनन्द, सम-आनन्द, अचिन्त्य-आनन्द, चिन्मय आनन्द एकमात्र आनन्द-ही-आनन्द से परिपूर्ण है, आनन्द से भिन्न अन्य कोई वस्तु है ही नहीं।

सत् चित्-आनन्द ! सत् चित्-आनन्द !! सत् चित् आनन्द !!!
हरिःशरणम् ! हरिःशरणम् !! हरिःशरणम् !!! हरिःशरणम् !!!!

राम सच्चिदानन्द दिनेशा।
तहाँ न मोह निशा लवलेशा ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

मु० : सुदामा प्रिन्टर्स, ६, संट बगान लेन, कलकत्ता ७०००६